अमर कथाएं



यशपाल जैन

नैतिक-कथा-माला : 2

अमर कथाएं

जीवन की सही दिशा-दर्शक
लघु-कथाएं

•

यशपाल जैन

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

ISBN 978-81-7309-882-6

•

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन
एन-77, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001

Publisher
Sasta Sahitya Mandal Prakashan
N-77, First Floor, Connaught Circus, New Delhi-110 001
फोन / Phone : 23310505, 41523565
Visit us at : www.sastasahityamandal.org
E-mail : sastasahityamandal@gmail.com

शाखा : कमला सदन, पटना साइंस कॉलेज के सामने, अशोक राजपथ,
पटना-800 006 (बिहार)
फोन : 0612-2678025

•

संस्करण : 2020
मूल्य : 60/-

•

मुद्रक : आर.के. ऑफसेट प्रोसेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

AMAR KATHAYEN
by Yes Pal Jain
Price : Rs 60/-

उस नई पीढ़ी को
जिस पर देश का उज्ज्वल भविष्य
निर्भर करता है।

—यशपाल जैन

प्रकाशकीय

'मण्डल' ने बोध कथाओं के कई संग्रह प्रकाशित किये हैं, जिन्हें पाठकों ने बहुत पसंद किया है। उन पुस्तकों की सतत मांग उनकी लोकप्रियता की द्योतक है।

कुछ दिन पहले प्रस्तुत पुस्तक के लेखक की दो पुस्तकें इस संस्था से प्रकाशित हुई थीं–'दिव्य जीवन की झांकियां' और 'नैतिक कथाएं'। उसके बाद उन्होंने जो बोध कथाएं लिखी, उनका संग्रह इस पुस्तक में किया गया है।

लघु कथाओं की तीन विशेषताएं हैं। पहली, यह कि उनके पढ़ने में अधिक समय नहीं लगता। दूसरे, वे कम पढ़े-लिखे पाठकों की भी समझ में आ जाती हैं। तीसरे, उनमें कोई-न-कोई शिक्षा निहित होती है, जो पाठकों की बुद्धि और हृदय का स्पर्श करती है।

जीवन-शोधन संबंधी अपने उद्देश्य के अनुरूप, 'मण्डल' इन पुस्तकों का प्रकाशन कर रहा,है। आगे भी करता रहेगा।

हमें पूर्ण विश्वास है कि पाठक इस तथा अन्य पुस्तकों का भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

दो शब्द

जितना विराट का महत्त्व है, उतना ही अणु का महत्त्व है; बल्कि यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वर्तमान युग में विराट से अधिक अणु की महिमा है। प्राचीनकाल में अध्यात्म ने अणु में अपार शक्ति का समावेश कर दिया। मंत्र उसके दृष्टान्त हैं। उसी प्रकार आधुनिक युग में विज्ञान ने अणु को शक्ति–सम्पन्न कर दिया है। अणुबम उसका जीता–जागता उदाहरण है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि लघु (बोध) कथाओं में मानव जीवन के शाश्वत मूल्य समाये रहते हैं। ये कथाएं थोड़े-से शब्दों में बहुत बड़ी बात कह देती हैं। उनसे जो शिक्षा मिलती है, वह प्राय: मोटी-से-मोटी पुस्तकों से भी नहीं मिल पाती। इसी से बोध कथाओं का महत्त्व प्राचीनकाल से अबतक निरन्तर चला आ रहा है।

मैं बोध कथाएं बहुत पढ़ता हूं और बहुत लिखता हूं। 'मण्डल' द्वारा प्रकाशित मासिक 'जीवन साहित्य' के प्रथम पृष्ठ पर वर्षों से मेरी बोध–कथा निकलती आ रही है। मुझे बीसियों पाठकों ने लिखा है कि जब पत्रिका आती है तो सारा घर इकट्ठा हो जाता है। एक व्यक्ति उसमें छपी कथाओं को पढ़ता है, शेष सुनते हैं। इससे अधिक आनंद की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है!

बहुत-सी कथाएं मैं स्वयं गढ़ता हूं, कुछ पढ़ी या सुनी अपनी भाषा में लिख देता हूं। इस प्रकार बोध कथाएं लिखने का मेरा क्रम अबाध गति से चलता रहा है, आगे भी चलता रहेगा।

मानव-जीवन आज बड़ा व्यस्त और त्रस्त हो गया है। छोटे-बड़े सबके मन पर किसी-न-किसी बात को लेकर तनाव है। सच तो यह है कि आज राजनैतिक ही नहीं, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा सभी क्षेत्रों में तनाव-ही-तनाव व्याप्त है। उसके कम होने के आसार नहीं हैं। उल्टे उसके बढ़ने की ही संभावना है।

ऐसे समय में इन कथाओं की उपयोगिता असंदिग्ध है। इन्हें जो भी पढ़ता

है, क्षण भर के लिए अपने संत्रास को भूल जाता है। यही इन कथाओं की सार्थकता है।

मैं आशा करता हूं कि यह तथा इस प्रकार की अन्य पुस्तकें जितने अधिक पाठक के हाथों में पहुंचेगी, उतना ही समाज और राष्ट्र का भला होगा। जीवन-मूल्यों में देशवासियों की आस्था, निस्संदेह, भारत की बुनियाद को पक्का करेगी।

—यशपाल जैन

अनुक्रम

1. क़र्ज़ का भुगतान

बहुत पुरानी बात है। फारस में एक बादशाह था। वह बड़ा भला और न्यायप्रिय था। अपनी प्रजा का पूरा ध्यान रखता था। उसके दुःख दर्द में बराबर काम आता था। प्रजा उसका बड़ा आदर करती थी।

एक दिन बादशाह जंगल में शिकार खेलने जा रहा था। रास्ते में देखता क्या है कि एक बहुत ही वृद्ध आदमी एक छोटा-सा पौधा रोप रहा है। बादशाह कौतूहलवश उसके पास गया। बोला, ''यह आप किस चीज का पौधा लगा रहे हैं?''

वृद्ध ने बड़े धीमे स्वर में कहा, ''अखरोट का।''

बादशाह ने हिसाब लगाया कि उसके बड़े होने और उस पर फल आने में कितना समय लगेगा। हिसाब लगाकर उसने अचरज से वृद्ध की ओर देखा। फिर बोला, ''सुनो भाई, इस पौधे के बड़े होने और उस पर फल आने में कई साल लग जायंगे। तबतक तुम कहां रहोगे?''

वृद्ध ने बादशाह की तरफ देखा। बादशाह की आंखों में मायूसी थी। उसे लग रहा था कि वह वृद्ध ऐसा काम कर रहा है, जिसका फल उसे नहीं मिलेगा।

यह देखकर वृद्ध ने कहा, ''आप सोच रहे होंगे कि मैं पागलपन का काम कर रहा हूं। जिस चीज से आदमी को फायदा नहीं पहुंचता, उस पर कौन मेहनत करता है। लेकिन यह भी तो सोचिये कि इस बूढ़े ने दूसरों की मेहनत का कितना फ़ायदा उठाया है। दूसरों के लगाये पेड़ों के कितने फल अपनी ज़िन्दगी में खाये हैं। क्या उस क़र्ज़ को उतारने के लिए मुझे कुछ नहीं करना चाहिए? क्या मुझे इस भावना से पेड़ नहीं लगाने चाहिए कि उनके फल दूसरे लोग खा सकें? जो अपने लाभ का काम करता है, वह तो स्वार्थी होता है।''

बूढ़े की यह दलील सुनकर बादशाह चुप रह गया। उसकी दलील का उसके पास कोई जवाब नहीं था।

2. नई दिशा

एक अमीर आदमी था। उसके पास बहुत धन-दौलत थी। चारों ओर वैभव था। जितना पैसा था, उतना उसमें धैर्य न था। एक पैसा देता, सैकड़ों-हजारों के गीत गाता था। बेचारे लेने वाले पर हमेशा के लिए उसके अहसान का बोझ लद जाता था।

एक दिन वह एक साधु के पास गया। बैठकर पहले तो उसने अपनी अमीरी का बखान किया, फिर अपनी दानशीलता का गुणगान किया। साधु समझ गया कि वह कितने पानी में है।

बात करते-करते उसने एक थैली निकाली और उसे साधु के सामने रखते हुए बोला, ''मैंने सोचा कि आपको पैसे की तंगी रहती है। इसलिए यह लेता आया। पूरे एक हजार हैं।''

कहते-कहते धनिक की आंखों में उसका अभिमान उभर आया।

साधु ने एक बार निगाह उठाकर उसकी ओर देखा और फिर थैली को अपने पास से हटाकर उसकी ओर बढ़ा दिया।

बोला, ''मुझे तुम्हारे पैसे की नहीं, तुम्हारी जरूरत है।''

अमीर मर्माहत हो गया। आख़िर साधु की हिम्मत कैसे हुई कि उसकी दी हुई भेंट को यों ठुकरा दिया! ऐसा तो आज तक किसी ने नहीं किया था। उसका अभिमान और तीव्र हो गया। उसकी आंखें लाल हो गई। उसकी यह अवस्था देखकर साधु मुसकराया। बोला, ''क्यों, तुम्हें बहुत बुरा लगा?''

धनिक ने कहा, ''बुरा लगने की बात ही है! इतनी बड़ी रक़म को आपने ऐसे लात मार दी, मानो वह मिट्टी हो।''

साधु कुछ देर चुप रहे, फिर बोले, ''सेठ, याद रखो कि जिस दान के साथ दाता अपने को नहीं देता, वह दान मिट्टी के बराबर ही होता है। दान का अर्थ है–सम-विभाजन। दूसरे का हिस्सा तुमने ले लिया है, उसे लौटाते हो तो इसमें अभिमान का अवसर कहां रहता है! यह तो चोरी का प्रायश्चित है।''

धनिक का गर्व चूर-चूर हो गया। उसके अन्दर का सोता इंसान जाग पड़ा। उस दिन से उसके जीवन की दिशा ही बदल गई।

3. निडरता का आधार

इब्राहीम ख़वास एक बहुत बड़े संत हो गये हैं। उनके अनेक शिष्य थे। एक दिन वह अपने किसी शिष्य के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में जंगल पड़ा। दोनों चलते रहे। जब चलते-चलते थक गये तो एक घने पेड़ के नीचे बैठ गये। संत तो ध्यान में लीन हो गये, शिष्य उनके पास बैठा रहा।

कुछ देर के बार शिष्य देखता क्या है कि एक शेर उधर ही बढ़ा चला आ रहा है। शिष्य कांप उठा। उसने सोचा, शेर हम दोनों को मार डालेगा। गुरुजी तो आंखें बंद किये बैठे हैं। उन्हें कुछ पता नहीं । मैं जानबूझकर अपनी जान क्यों दूं?

यह सोचकर शिष्य चुपचाप उठा और पेड़ पर चढ़कर ऊपर जा बैठा। देखने लगा कि आगे क्या होता है।

शेर संत के पास आया। उसे घूरकर देखा, सूंघा और अंगड़ाई लेकर आगे बढ़ गया। शिष्य के खोये प्राण लौट आये।

जब शेर दूर निकल गया और उसके लौटने की कोई आशंका न रही तो शिष्य पेड़ पर से नीचे उतरा और गुरु के पास आ गया। उसका बदन कांप रहा था।

संत का ध्यान पूरा हुआ। उसने आंखें खोलीं। बोले, ''चलो, आगे चलें।''

हकीम आये, दवा की, पर किसी से भी बादशाह को फ़ायदा नहीं पहुंचा। सब निराश हो गये। चिकित्सकों ने कह दिया कि बादशाह बचेंगे नहीं।

पर सिकन्दर आसानी से हार मानने वाला नहीं था। उसने अपनी हुकूमत के खास-खास लोगों को बुलाया और कहा, ''जैसे भी हो, मेरी जान बचाओ।''

लोगों ने बादशाह की ओर देखा और कातर स्वर में बोले, ''बादशाह सलामत, इलाज मर्ज का हो सकता है, लेकिन मौत का नहीं।''

बादशाह की आंखें खुल गई। उसने अनुभव किया कि उसका यह मानना कि, वह दुनिया में सबसे बड़ा है, कितना मिथ्या था, कितना बड़ा झूठ था। उसका अभिमान गल गया।

उसने अपने वज़ीर को बुलाया और कहा, ''मेरा जनाज़ा निकालो तो मेरे दोनों हाथ बाहर कर देना।''

बादशाह मर गया, पर जो कहावत उसे लेकर बनी, वह आज तक चालू है:

आया था यहां सिकन्दर दुनिया से ले गया क्या?
थे दोनों हाथ ख़ाली बाहर कफ़न से निकले!

6. अपूर्व भवन

एक बड़े ऊंचे दर्जे का कलाकार था। उसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली थी। उसके चित्र बड़े आकर्षक होते थे। उनकी रंग-योजना बड़ी मोहक होती थी। उन चित्रों को जो भी देखता था, देखता रह जाता था। उन्हें देखने के लिए उसके देश के कोने-कोने से ही नहीं, दूसरे देशों से भी कला-पारखी आते थे और विभोर होकर लौट जाते थे।

एक बार उस कलाकार ने एक भवन का चित्र बनाया। दुनिया में भवन भांति-भांति के होते हैं, किन्तु यह भवन तो निराला था। ऐसा भवन

किसी ने, कहीं भी, नहीं देखा था। उसका रूप अपूर्व था। उसके रंग अद्भुत थे। भवन के बाहर प्रभु ईसा-मसीह बड़ी प्रसन्न मुद्रा में दरवाजे पर दस्तक देते खड़े थे।

लोगों ने उस चित्र को देखा। उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उस भवन की प्रत्येक रेखा अत्यन्त सजीव थी। फिर ईसा की उपस्थिति से उस भवन की अलौकिकता और बढ़ गई थी।

जो देखता, वही जी-भरकर उसकी प्रशंसा करता। कई दिन इस प्रकार निकल गये।

एक दिन एक कला-समीक्षक वहां आया। उसने भवन को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखा, सराहना के भाव उसके चेहरे पर उभरे, फिर अचानक गंभीर होकर वह कलाकार के पास गया। बोला, ''इसमें एक कसर रह गई है।''

''क्या?'' कलाकार ने उत्सुकता से पूछा।

समीक्षक ने उसी गंभीरता से कहा, ''मित्र, आप इसके दरवाजे पर हत्था लगाना भूल गये हैं। बताओ, यह खुलेगा कैसे?''

कलाकार ने उसकी बात ध्यान से सुनी, फिर मुसकराकर बोला, ''भाई, यह दरवाजा मनुष्य का हृदय है। इसके खुलने के लिए बाहरी हत्थे की जरूरत नहीं होती। यह तो भीतर से खुलता है।''

समीक्षक खुश था कि उसे चित्र में एक कमी दिखाई दी, किन्तु कलाकार के कथन को सुनकर तो वह अवाक् रह गया और गर्दन झुकाकर चुपचाप वहां से चला गया।

7. नदी से सीख

एक नदी थी। उसके दोनों कूलों पर आदमियों की बस्ती थी। जो इस कूल पर रहते थे, वे अनुकूल कहलाते थे। जो उधर के कूल पर रहते थे, वे प्रतिकूल के नाम से पुकारे जाते थे। नदी के पानी से दोनों ओर के लोग

अपना-अपना काम चलाते थे। खेती-बारी करते थे, साग-सब्जी उगाते थे, बाग-बगीचे सींचते थे। बड़े आनंद का जीवन बिताते थे।

एक बार संयोग से पानी को लेकर दोनों पक्षों में तनातनी हो गई। अनुकूल कहते थे कि प्रतिकूल अधिक पानी ले लेते हैं और प्रतिकूल कहते थे कि अनुकूल अधिक पानी ले लेते हैं। दोनों अपनी-अपनी बात पर अड़े थे। कोई भी झुकने को तैयार नहीं था।

जब आपसी बातचीत से मामला नहीं निबटा तो वे मरने-मारने पर उतारू हो गये। उनके पास जो भी हथियार थे, उन्हें निकाल लाये और एक-दूसरे पर टूट पड़ने को आमादा हो गये।

तभी किसी ने जाकर भगवान बुद्ध को उस भयानक स्थिति की सूचना दी। सूचना पाते ही बुद्ध ने दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों को बुलाया और बड़ी शान्ति से मुसकराते हुए पूछा, ''कहो भाई, क्या बात है?''

प्रतिनिधियों ने एक-दूसरे पर आरोप लगाते हुए कहा, ''हम इस अन्याय को कदापि सहन नहीं करेंगे।''

बुद्ध उसी प्रकार मुसकराते हुए बोले, ''तो तुम लोग क्या करोगे?''

प्रतिनिधियों ने आवेश में कहा, ''हम खून की नदी बहा देंगे।''

''अच्छा तो,'' बुद्ध बड़े शान्त भाव से बोले, ''तुम्हे पानी नहीं चाहिए, खून चाहिए।''

उन लोगों ने कुछ हत्प्रभ होकर बुद्ध की ओर देखा। फिर बोले, ''नहीं, हमें पानी चाहिए, पानी।''

''तब,'' बड़े सहज भाव से बुद्ध ने कहा, ''ख़ून बहाकर ख़ून मिलेगा, पानी कैसे पाओगे?''

कुछ ठहरकर आगे बुद्ध बोले, ''याद रखो, हिंसा हिंसा को बढ़ाती है, वैर वैर को बढ़ाता है। नदी से सीख लो। वह किसी से लड़ती-झगड़ती नहीं। प्रेम-भाव से सदा पानी का दान करती रहती है।''

बुद्ध के शब्दों ने जादू का काम किया और दोनों पक्षों ने बड़े सद्भाव से अपनी समस्या का समाधान कर लिया।

8. लाचारी पर चोट

एक नेत्रहीन व्यक्ति था। वह सड़क के किनारे कपड़ा फैलाये बैठा रहता था और आने-जाने वाले यात्रियों से गिड़-गिड़ाकर याचना करता था, ''बाबा, अंधे को कुछ दे दो, तुम्हारा भला होगा।'' बेचारा आंखों से लाचार था, कुछ कर भी तो नहीं सकता था।

एक दिन शाम होने पर हर रोज़ की तरह उठा और लाठी के सहारे अपने ठिकाने की ओर चल दिया। सोचता जा रहा था कि दुकानदार से आटा लेकर रोटी बनावेगा। आज उसे कुछ ज्यादा पैसे मिल गये थे। इसलिए उसके मन में आया कि आटे के साथ कुछ दाल भी लेगा और आनन्द से रोटी खायेगा। और दिनों में तो वह नमक से ही काम चला लेता था।

उसके मन में आटे-दाल के साथ और भी कुछ बातें आ रही थीं। पिछली बार उसने अपना पेट काटकर कुछ रुपये अपनी मां को भेजे थे, रुपये पाकर मां ने छलकती आंखों से बेटे को जो आसीस दी थी, उससे उसकी ज़िन्दगी को नई ताक़त मिली थी। इस बार वह और अधिक रुपये भेजेगा।

सोचते-सोचते रास्ता कब कट गया, उसे पता भी न चला। दुकान पर पहुंचकर उसने बड़ी उमंग से अपनी फटी फतूरी की जेब में हाथ डाला कि पैसे निकाले और दुकानदार से आटे और दाल की मांग करे।

अचानक उसे बिजली का-सा धक्का लगा। उसका हाथ बेजान-सा हो गया। उसकी जेब से पैसे गायब थे। उसे याद आया कि रास्ते में उससे कोई टकरा गया था। हो-न-हो, उसी बदमाश ने उसकी जेब साफ कर दी होगी!

उसकी दुनिया और भी अंधकारपूर्ण हो गई। उसकी इच्छा मिट्टी में मिल गई। उसने बेबसी की एक लम्बी सांस ली। धीरे-से बोला, ''हाय क्या हो गया है इस दुनिया को! अरे, उस निरदई को यह तो देखना था कि

किसकी जान ले रहा है!'' उसे पैसे जाने का तो दुःख था ही, पर उससे भी अधिक दुःख इस बात का था कि उसकी लाचारी पर किसी ने चोट की थी।

निर्जीव पैरों से वह अपने ठिकाने पर आया और भूखे पेट को हाथ से दबाते हुए अपनी जगह पर पड़ गया। सवेरा अभी बहुत दूर था।

9. संत की महिमा

सूफी संतों में एक बहुत बड़ी संत थीं। उनका नाम था राबिया। वह निहायत सादगी की ज़िन्दगी बिताती थीं और हर घड़ी 'अल्लाह' नाम उनकी ज़बान पर रहता था। उनकी कुटिया में साधु-संतों और भक्तों का आना-जाना लगा रहता था।

एक दिन एक संत आया और रात को उनकी कुटिया में ही रह गया। उसने देखा, राबिया ने रात को अपने सोने के लिए एक टाट बिछाया और तकिये की जगह एक ईंट रख ली। 'अल्लाह' का नाम लेती हुईं फिर वह उस बिस्तर पर आराम से लेट गईं और ज़रा-सी देर में गहरी नींद में सो गईं।

संत चकित रह गया। इतने ऊंचे दर्जे की संत और इतनी कठोर जिन्दगी! उसे बड़ा दुःख हुआ और वह रात-भर अपने बिस्तर पर पड़ा छटपटाता रहा। एक पल को भी उसकी आंख नहीं लगी।

सवेरे उठकर उसने राबिया से कहा, ''आप इतनी तकलीफ़ क्यों उठाती हैं?''

''कैसी तकलीफ़?'' राबिया ने पूछा।

रात को संत ने जो देखा था, वह बता दिया। फिर बोला, ''सुनिये, मेरे कई अमीर दोस्त हैं। अगर आपकी इजाज़त हो तो मैं उनसे कहकर आपके लिए एक अच्छा-सा बिस्तर भिजवा दूं?''

राबिया उसकी बात सुनकर थोड़ी देर चुप रहीं, फिर बोलीं, ''तुम्हारी मोहब्बत के लिए क्या कहूं! पर यह तो बताओ कि क्या मुझे, तुम्हें और अमीरों को देने वाला एक ही नहीं है?''

संत ने दबी ज़बान से कहा, ''जी हां, एक ही है।''

''तब,'' राबिया बोली, ''क्या वह हमें भूल गया है और दौलतमंदों की उसे याद है? अगर उसे हमारी याद नहीं है तो हम याद क्यों दिलावें?''

घड़ी-भर खामोश होकर उन्होंने कहा, ''मेरे भाई, हमें यह हाल पसंद है, क्योंकि उसे यह पसंद है।''

बेचारा संत आगे एक शब्द भी न बोल सका।

10. उपदेश

एक सेठ थे। एक दिन एक महात्मा उनकी हवेली पर आये। सेठ ने उनका आदर-सत्कार किया और उन्हें खाने-पीने की बढ़िया-बढ़िया चीजें दीं।

उन्हें लेकर महात्मा जब जाने लगे तो सेठ ने कहा, ''स्वामीजी, कुछ उपदेश तो देते जाइये।''

महात्मा बोले, ''आज नहीं, सातवें दिन तुम्हारे यहां फिर आऊंगा तो तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूंगा।''

अपने वचन के अनुसार सातवें दिन स्वामीजी आये तो उनके हाथ में एक पात्र था। सेठ ने उनके आहार के लिए अच्छी-अच्छी मिठाइयां और नमकीन की व्यवस्था कर रखी थी।

स्वामीजी ने अपना पात्र सेठ के आगे कर दिया। सेठ उसमें कुछ डालने ही वाले थे कि उनकी निगाह उस पात्र के अंदर भरे कूड़े पर गई। उन्होंने कहा, ''स्वामीजी, इसमें खाने की चीजें कैसे डालूं? यह तो गंदा है?''

''तब?'' साधु ने पूछा।

सेठ ने कहा, "लाइये, इसे साफ कर दूं।"

स्वामीजी ने स्वयं ही पात्र के कूड़े को फेंक दिया और उसे अच्छी तरह साफ़ कर दिया। उसके बाद सेठ ने उसमें खाने की चीजें डाल दीं।

लेकर स्वामीजी चलने को हुए तो सेठ ने कहा, "महाराज, आप आ रहे हैं! क्या सात दिन पहले के अपने वायदे को भूल गये? आपने आज कुछ उपदेश देने को कहा था।"

साधु ने सेठ की ओर देखा। बोले, "क्या उपदेश तुम्हें मिला नहीं?"

सेठ ने चकित होकर कहा, "जी नहीं।"

तब साधु बोले, "मेरे पात्र में गंदगी भरी थी तो तुमने उसमें खाने की चीजें नहीं डालीं। उसे साफ़ कराया। तुम्हारे अंदर सब तरह की गंदगी भरी है। पहले उसे निकाल बाहर करो।"

सेठ साधु का मुंह देखता रह गया।

11. अहंकार का भेद

एक राजा और रानी थे। उनके एक लड़की थी। जब राजकुमारी बड़ी हुई तो रानी को उसके विवाह की चिन्ता होने लगी। वह राजा से बार-बार कहती कि लड़की सयानी हो गई है। अच्छा-सा लड़का खोजकर उसके हाथ पीले कर दो।

राजा के महल में एक जमादारिन आया करती थी। एक दिन रानी को उदास देखकर उसने कारण पूछा तो रानी ने कहा, "बेटी बड़ी हो गई है। उसके ब्याह की चिन्ता मुझे रात-दिन खाये जा रही है।"

सुनकर जमादारिन बोली, "रानीजी, आप क्यों हैरान होती हैं। मेरा लड़का जो है।"

उसकी बात से रानी को बड़ा गुस्सा आया। बोली, "खबरदार, जो आइंदा इस तरह की बात मुंह से निकाली!"

अगले दिन जमादारिन आई तो उसने पूछा, "रानीजी, कोई लड़का मिला?"

रानी ने कहा, "नहीं।"

बिना संकोच के जमादारिन बोली, "आप तो नाहक हैरान होती हैं। घर में ही लड़का मौजूद है।"

उसका इतना कहना था कि रानी आपे से बाहर हो गई और उसे महल से निकलवा दिया।

रात को राजा महल में आये तो रानी ने सारी बात उन्हें कह सुनाई। सुनकर राजा ने पूछा, "वह कहां खड़े होकर बात कर रही थी?" रानी ने बता दिया। राजा ने कहा, "रानी, हो-न-हो, जमादारिन नहीं, कोई और बोलता होगा।"

रानी ने खीजकर कहा, "हम दो को छोड़कर और कोई वहां था ही नहीं।"

राजा ने कहा, "अच्छा!"

दूसरे दिन राजा ने किया क्या कि उस जगह को खुदवाया। देखा, नीचे अशर्फियों से भरे कलश थे। राजा ने उन्हें निकलवाकर जगह को ठीक करा दिया और रानी से कहा, "अब तुम जमादारिन से बात करना।"

रानी ने जमादारिन को बुलवाया और अपनी तरफ़ से बेटी के ब्याह की चर्चा छेड़ी। जमादारिन ने कोई जवाब नहीं दिया। रानी ने पूछा, "अरी, तेरे लड़के का क्या हुआ?"

जमादारिन ने गिड़गिड़ाकर कहा, "कहां आप और कहां हम! कहां राजा भोज और कहां कंगला तेली!"

अब रानी समझ गई कि जमादारिन के अहंकार का भेद क्या था।

12. अहिंसा की बुनियाद

एक बार एक साधु कहीं से गुजर रहे थे। उन्हें पता लगा कि बस्ती के पास एक सांप रहता है। वह बड़ा खतरनाक है। उसने लोगों को बहुत ही डरा रखा है। उधर से जो भी निकलता, उसी पर वह दौड़ता।

लोगों ने अपनी हैरानी साधु को बताई और कहा, ''महाराज, कुछ ऐसा उपाय कीजिये, जिससे हमारा संकट दूर हो।''

साधु उधर गये, जहां सांप रहता था। सांप के पास पहुंचकर वह खड़े हो गये। सांप ने दौड़कर उन पर आक्रमण करना चाहा, लेकिन साधु की आंखों से बरसते प्रेम और चेहरे से टपकती निडरता को देखकर वह सहम गया। साधु ने कहा, ''सर्पराज, यह भी कोई जिन्दगी है कि सब अपने से डरें और कोई पास भी न फटके! तुम लोगों को काटना छोड़ दो और सबके साथ दया और प्रेम का बर्ताव करो। प्रेम से बढ़कर दुनिया में कोई शक्ति नहीं है।''

सांप ने साधु का उपदेश सुना। उसका उस पर गहरा असर पड़ा। अपनी उग्रता से वह स्वयं परेशान था। उसे हर घड़ी चौकन्ना रहना पड़ता था। इतना ही नहीं, आवेग से उसके सारे शरीर में तनाव आ जाता था और उस तनाव के हटने पर उसकी देह टूटने लगती थी। साधु की बात मानकर उसने अपनी उग्रता छोड़ दी। वह अहिंसक बन गया।

लोगों ने जब देखा कि वह विषधर उन्हें देखकर दौड़ता नहीं है तो उन्हें बड़ी शान्ति मिली। लेकिन इस ख़बर के फैलते ही लड़कों की टोली वहां पहुंच गई और उन्होंने सांप को चुपचाप पड़ा देखकर उस पर पत्थर फेंकने शुरू किये। पत्थरों की चोट से सांप लहूलुहान हो गया, पर उसने अपने निश्चय को नहीं छोड़ा। उस पर चोटें पड़ती रहीं, पर उसने अपना मुंह तक नहीं उठाया। उसका बदन चूर-चूर हो गया।

कुछ ही समय बाद वही साधु फिर वहां आये। सांप की हालत

देखकर वह बड़े दुःखी हुए। उन्होंने सांप से पूछा, ''क्यों, क्या बात है?''

सांप ने कहा, ''मेरी यह हालत आपके कारण हुई है। आपने मुझे उपदेश दिया था कि मैं अपनी उग्रता छोड़ दूं। सबको प्रेम करूं। उसी का यह नतीजा है। लड़कों ने पत्थर मार-मारकर मुझे बेहाल कर दिया है।''

साधु उसकी बात सुनकर बोले, ''मेरे भोले भाई, मैंने तुझसे काटना छोड़ने को कहा था, फुफकारने को थोड़ा मना किया था। बिना तेजस्विता के अहिंसा बेमानी है।''

सांप को नया मार्ग मिला। उसने जैसे ही फुफकारना आरंभ किया, बच्चे-बड़े डर के मारे भागने लगे। सांप की हैरानी दूर हो गई।

13. बोध

किसी बस्ती में एक अवधूत रहते थे। उनके यहां बहुत-से साधु-महात्मा आते-जाते रहते थे। भंडारे के दिन तो बहुत-से लोग जमा हो जाते थे। वह सबका बड़े प्यार से स्वागत करते थे और बिना प्रसाद पाये किसी को जाने नहीं देते थे।

एक बार एक साधु उनके पास आकर ठहरे। साधु युवा थे। घर-बार छोड़े उन्हें थोड़े ही दिन हुए थे। साधना के मार्ग पर चलना अभी शुरू ही किया था।

उन्हीं दिनों अवधूत ने बड़ा भंडारा किया। काफी साधु-संत आये। दूसरे लोग आये। उन सबकी बड़ी अच्छी तरह आवभगत हुई।

जब सब चले गये तो अचानक एक कोढ़ी आया। उसका सारा शरीर गल रहा था। हर हिस्से से खून और मवाद बह रहा था। उसे देखकर डर लगता था। पर अवधूत ने सबके समान उसका भी प्रेम और आदर से स्वागत किया और उसके लिए आसन बिछाया। कोढ़ी को उस पर

बिठाकर अवधूत ने युवा साधु से भोजन लाने का संकेत किया। जब भोजन आ गया तो उन्होंने कहा, ''यह अपने हाथ से तो खा नहीं सकते तुम इन्हें खिला दो।''

युवा साधु को काटो तो खून नहीं! उस रोगी के ओंठों से मवाद बह रहा था। उसकी ओर देखा भी नहीं जाता था, पर अवधूत का कहना भी कैसे टालते! वह ग्रास तोड़-तोड़कर उसे खिलाने लगे। उनकी कोशिश थी कि उंगलिया रोगी के ओंठों से छूने न पावें। इससे कुछ खाना मुंह में अंदर न जाकर ओंठों से छूकर नीचे पत्तल पर गिर जाता था।

जब वह रोगी खाना खा चुका और पानी पीकर चला गया तो अवधूत ने साधु से कहा, ''उसकी पत्तल पर जो बचा है, उसे इकट्ठा करो और खा लो।''

साधु यह सुनकर जड़ हो गया। बड़े बेमन से उसने उस जूठन को इकट्ठा किया, पर उसे खाये तो कैसे खाये! अवधूत यह सब देख रहे थे। वह सपाटे से आये और बड़े स्वाद से उसे खा गये। फिर युवा साधु से बोले, ''क्या तुम समझते हो कि वह रोगी था? नहीं, वह रोगी नहीं था। जिसका अंग-प्रत्यंग गल रहा हो, वह अपने आप भला चलकर आ सकता था? वह कुष्ठी के रूप में भगवान थे, जो यहां आये थे।''

युवा साधु यह सुनकर चकित रह गया। उसे बोध हुआ कि बाहरी रूप को देखकर किसी के बारे में अपनी राय नहीं बनानी चाहिए।

14. वह ज्ञान किस काम का!

एक दिन एक ज्ञानी आदमी एक संत के पास गया। ज्ञानी बहुत ही परेशान था। जाने क्या-क्या समस्याएं उसके दिमाग़ को घेरे हुए थीं। आत्मा क्या है? आदमी के मरने के बाद वह कहां चली जाती है? सृष्टि का निर्माता कौन है? मरकर आदमी कहां जाता है? स्वर्ग-नर्क क्या है? आदि-आदि

बीसियों सवाल तूफ़ान की तरह उसके मन में उठते रहते थे। उसने इन विषयों की बहुत-सी पुस्तकें पढ़ी थीं, पर लोगों की अलग-अलग रायें थीं। ज्यों-ज्यों वह इन समस्याओं में घुसता गया, त्यों-त्यों उलझता गया।

जब वह संत के पास पहुंचा तो देखता क्या है, उसके आसपास अनेक स्त्री-पुरूष बैठे हैं। वे तरह-तरह के सवाल पूछ रहे थे और संत मुसकराकर बड़े सहज भाव से उत्तर दे रहे थे। ज्यादातर घर-गिरिस्ती के सवाल थे। किसी को कोई हैरानी थी तो किसी को कोई। काफ़ी देर तक यह सिलसिला चलता रहा, पर संत उसी तरह हंसते-मुसकराते जवाब देते रहे। एक क्षण को भी उनकी वाणी तीव्र नहीं हुई। प्रेम में अंतर नहीं आया।

बेचारा ज्ञानी अपनी समस्याएं लेकर आया था। यहां का हाल देखकर और परेशान हो उठा। यह संत हैं, इन्हें क्या पड़ी है दुनियादारी के मामलों में टांग अड़ाने की! करें अपना भगवत चिन्तन! लगें अपनी आत्मा की उन्नति में!

पर संत थे कि रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो लोगों का सुख-दुःख उनका अपना सुख-दुःख है।

आखिर उस ज्ञानी से नहीं रहा गया। उसने संत को संबोधित करते हुए कहा, ''महाराज, आप ज्ञानी हैं। दुनिया को छोड़ चुके हैं। आपको इन छोटी-छोटी बातों से क्या लेना देना!''

संत ने उसकी ओर देखा और बोले, ''भाई मेरे, मैं ज्ञानी नहीं हूं, मैं त्यागी नहीं हूं, इंसान हूं। वह ज्ञान किस काम का, जो इतना घमंडी हो कि रो न सके, इतना गंभीर हो कि हंस न सके और इतना आत्मकेन्द्रित हो कि अपने सिवा दूसरे की चिन्ता न कर सके! ऐसा ज्ञान तो अज्ञान से भी बुरा है, खतरनाक है।''

ज्ञानी की उलझन दूर हो गई। एक क्षण में उसे अपने प्रश्नों का उत्तर मिल गया।

15. सत्य-प्राप्ति का मार्ग

ढाई हजार वर्ष पहले की बात है। वैशाली के राजकुमार वर्द्धमान के कुछ साथी उनसे मिलने आये। देखा, भवन के तल में उनकी मां त्रिशला अपने काम-काज में लगी हैं। वर्द्धमान वहां नहीं थे। लड़कों ने मां से पूछा, ''वर्द्धमान कहां हैं?''

मां ने उत्तर दिया, ''ऊपर हैं।''

भवन सात मंजिल का था। लड़के यह सुनकर तेजी से दौड़े और सातवीं मंजिल पर पहुंच गये। देखते क्या हैं कि वर्द्धमान तो वहां हैं नहीं, उनके पिता सिद्धार्थ किसी काम में लगे हैं। लड़कों ने उनसे पूछा, ''वर्द्धमान कहां हैं?''

उन्होंने कहा, ''नीचे हैं।''

लड़के बड़े हैरान हुए। उन्होंने हर मंज़िल को देखा तो वर्द्धमान चौथी मंज़िल में मिल गये। लड़के अपने साथी को पाकर बड़े ख़ुश हुए। वे राजकुमार के इर्द-गिर्द बैठ गये। उन्होंने विस्मय से कहा, ''वर्द्धमान, हमारी समझ में एक बात नहीं आई। जब हमने मां से पूछा कि तुम कहां हो तो उन्होंने जवाब दिया, 'ऊपर'। ऊपर जाकर पिता से पूछा तो उन्होंने कहा, 'नीचे'। दोनों में कौन सही है?''

वर्द्धमान ने उनकी बात सुनी, फिर थोड़ी दूर पर बैठे एक कौवे की ओर संकेत करके पूछा, ''इसका रंग कैसा है?''

सारे लड़कों ने एक स्वर में कहा, ''काला।''

वर्द्धमान ने बोले, ''यह लाल और सफेद भी है।''

''नहीं-नहीं, यह काला है, काला।'' लड़कों ने कहा।

वर्द्धमान ने कहा, ''तुम ठीक कहते हो कि यह काला है, लेकिन इसका रक्त लाल है, इसलिए यह लाल है और चूंकि इसकी हड्डियां सफेद हैं, इसलिए यह सफेद भी है, शरीर से काला होने के कारण यह काला है।''

फिर थोड़ा रुककर उन्होंने कहा, ''मां भवन के तल में बैठी थीं, इसलिए पूछने पर उन्होंने बता दिया कि ऊपर हैं। पिता ऊपर बैठे थे। उन्होंने कह दिया, नीचे हैं। हर वस्तु के कई पहलू होते हैं। सत्य को पाने के लिए वस्तु को सभी पहलुओं से देखना चाहिए, तभी सत्य को पाया जा सकता है।''

यही वर्द्धमान आगे चलकर तीर्थंकर महावीर बने।

16. असली धन

सेवाग्राम की बात है। एक दिन गांधीजी सवेरे घूमने निकले। और भी कुछ लोग उनके साथ थे। अचानक गांधीजी की निगाह रास्ते में पड़े पूनी के एक छोटे-से टुकड़े पर गई। उन्होंने साथ में चल रही एक बहन को उसे उठा लेने का इशारा किया। उस बहन ने उसे उठा लिया।

टहलने के बाद गांधी जब आश्रम में लौटे तो उन्हें सहसा पूनी के टुकड़े की याद हो आई। जिस बहन ने उसे उठाया था, उसे बुलाया गया। गांधीजी ने कहा, ''पूनी के जिस टुकड़े को तुमने उठाया था, उसे ले आओ।''

वह बहन यह सुनकर हैरान हो गई। बोली, ''बापू! मैंने तो यह सोचकर कि रास्ते में कचरा पड़ा है, उसे उठाकर कूड़ेदान में डाल दिया।''

गांधीजी की त्यौरी चढ़ गई। उन्होंने पूछा, ''यदि वहां पैसा पड़ा होता तो क्या तू उसे उठाकर कचरे में डाल आती?''

उसने उत्तर दिया, ''नहीं।''

''तब'', गांधीजी ने कहा, ''वह भी पैसा ही था। असली धन क्या है, यह तुम्हें आश्रम में रहकर पहचानना आना चाहिए। जिसने उस पूनी को बिना पूरा काते छोड़ा, उसने तो धन फेंका ही, मैंने तुमसे उठाने को

कहा, तब भी तुम उस धन को नहीं पहचान सकीं! जाओ उसे लाओ, याद रखो, परिश्रम से धन बनता है और धन बनने पर उसका उपयोग करना हमारा कर्तव्य है!''

एक अन्य अवसर पर गांधीजी ने कहा था कि यदि हम एक छोटी-सी चीज को नहीं संभाल सकते तो स्वराज्य को संभालना भी हमारे लिए कठिन होगा।

17. कोई बेगाना नहीं

हजरत ख़लील बड़े दयालु और दानी थे। वह जब तक किसी मेहमान को खाना नहीं खिला देते थे, तबतक स्वयं कुछ नहीं खाते थे। एक बार कई दिन तक कोई भी आदमी उनके मेहमान-घर में नहीं आया। वह बड़े परेशान हुए और किसी मेहमान को ढूंढ़ने निकले। थोड़ी कोशिश के बाद उन्हें एक दुबला-पतला बूढ़ा मिल गया। बड़े प्रेम से वह उसे घर ले आये। उसे आदर से मेहमान-घर में बिठाया और नौकरों से खाना लाने को कहा।

खाने की थाली आ गई, लेकिन उसे बूढ़े ने खाने से पहले खुदा का नाम नहीं लिया।

हज़रत खलील ने कहा, ''बड़े मियां, यह क्या! आपने खुदा का नाम भी नहीं लिया।''

बूढ़ा बोला, ''मैं आग का पूजने वाला हूं। मेरे गुरु ने मुझे ऐसा करना नहीं सिखाया।''

यह सुनकर खलील को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उस बूढ़े को बुरा-भला कहा और बेइज़्ज़ती करके उसे घर से निकाल दिया।

बूढ़ा चला गया। तभी ख़लील को खुदा के यहां से आवाज सुनाई दी, ''ख़लील, तूने यह क्या किया? मैंने इस बूढ़े को सौ बरस ज़िन्दगी और खाना दिया और तू उसे ज़रा-सी देर भी नहीं निभा सका। ठीक है

कि वह आग की पूजा करता था, पर वह इंसान तो था। लोगों के यकीन अलग हो सकते हैं, लेकिन इंसानियत के लिए कभी कोई बेगाना नहीं होता। ख़लील, तुझे अपनी मोहब्बत का हाथ नहीं खींचना चाहिए था।''

हजरत खलील को अपनी भूल अनुभव हुई और उन्होंने अहद किया कि आइंदा कभी ऐसा नहीं करेंगे।

18. कीमती दुशाला

एक बादशाह था। वह बड़ा विलासी था। ख़ूब शराब पीता था और सब तरह की बुराइयां करता था। वह अपने वज़ीर से कहता था, ''इंसान का जन्म बार-बार नहीं मिलने का। इसलिए ख़ूब भोग भोगो, ख़ूब मौज करो।''

वज़ीर भला था। बादशाह की हरकतों से उसे बड़ा दुःख होता था। मौका देखकर वह कभी-कभी बादशाह को समझाता था, लेकिन उसकी समझ में कुछ भी नहीं आता था। जब उसे शराब का नशा चढ़ता था तो उसे भले-बुरे की पहचान नहीं रहती थी। उसके ऐबों से सारी रियाया तंग आ गई थी। पर बादशाह इतना बेरहम था कि राज्य का कोई भी आदमी डर के मारे उसके सामने मुंह नहीं खोल सकता था।

संयोग से एक दिन बादशाह अपने वज़ीर के किसी काम से बहुत खुश हो गया। उसने उसे एक दुशाला भेंट किया। दुशाला बड़ा ही क़ीमती था। लेकिन जैसे ही वज़ीर दरबार से बाहर निकला कि उसने उस दुशाले से अपनी नाक पोंछ डाली।

फिर क्या था! एक दरबारी, जो वज़ीर से जलता था, दौड़ा हुआ बादशाह के पास पहुंचा और बोला, ''बादशाह सलामत, वज़ीर साहब ने आज बड़ी गुस्ताखी का काम किया है।''

बादशाह ने पूछा, ''क्या?''

दरबारी ने कहा, "आपने इतना कीमती दुशाला भेंट दिया, लेकिन उन्होंने आपके तोहफ़े की यह इज़्ज़त की कि उससे अपनी नाक पोंछ डाली!"

यह सुनकर बादशाह ने फ़ौरन वज़ीर को बुलवाया। उसके आते ही कहा, "तुम्हारी यह जुर्रत कि मेरी तौहीन करो! मेरे दिये दुशाले से नाक पोंछो!"

वज़ीर ने बड़े अदब से कहा, "जनाबेआला ने मुझे जो तालीम दी है, वही तो मैंने किया है।"

"हमने तालीम दी है? सो कैसे?" बादशाह ने पूछा।

वज़ीर बोला, "खुदा ने आपको इस दुशाले से भी ज़्यादा कीमती शरीर दिया है। आपने शरीर का जो इस्तेमाल किया है, उसी से मुझे यह तालीम मिली है।"

वज़ीर का तीर ठीक निशाने पर लगा। बादशाह की आंखें खुल गई और उस दिन से उसका जीवन बदल गया।

19. बादशाह का फ़र्ज़

एक बादशाह था। उसके पास एक बहुत बढ़िया अंगूठी थी। उसमें बड़ा क़ीमती नगीना जड़ा था। यह नगीना रात में भी वैसा ही चमकता था, जैसा दिन की रोशनी में चमकता था।

दुर्भाग्य से उस बादशाह के राज्य में एक साल बड़े ज़ोर का अकाल पडा। चारों तरफ़ तबाही मच गई। लोग भूखों मरने लगे। बादशाह ने अपने नौकरों को बुलाया और उन्हें अंगूठी देते हुए कहा, "इसे ले जाओ और इसके नगीने को बेचकर जो दाम मिले, उन्हें कंगालों और बेकसों में बांट दो।"

बादशाह के सामने नौकर क्या कहते! उन्होंने अंगूठी का नगीना

बाज़ार में ले जाकर बेच दिया और जो कुछ मिला, उसे ग़रीबों में बांट दिया।

एक आदमी ने यह देखा तो बादशाह से कहा, "आपकी अंगूठी का नगीना अनूठा था। वैसा नगीना अब मिल नहीं सकता। आपने यह क्या किया कि उसे बिकवा दिया?"

बादशाह की आंखें भर आई। आंसू बहने लगे। उसने रुंधे गले से कहा, "जब लोग भूखों मरते हों तो क़ीमती नगीना पहनना किस काम का! मुझे वह शोभा नहीं देता। मैं रियाया का ख़िदमतगार हूं। मुझे रियाया का दुःख-दर्द पहले देखना चाहिए। अपना शौक-आराम बाद में।..."

उस आदमी ने बादशाह को रुकते हुए देखकर कहा, "आप ठीक कहते हैं, लेकिन..."

उसकी बात बीच में ही काटते हुए बादशाह बोला, "लेकिन क्या! इंसान वह अच्छा है, जो अपने आराम की निस्बत दूसरों के आराम को ज्यादा पसंद करे। अगर बादशाह अपने सिंहासन पर चैन की नींद सोने लगे तो फकीर किस तरह आराम की ज़िन्दगी बसर कर सकेंगे? रियाया के सुख-दुःख के सामने मेरी अंगूठी के नगीने की क़ीमत कुछ भी नहीं है।"

20. सुनो और गुनो

एक साधु था। बस्ती के किनारे एकान्त जगह पर उसका आश्रम था। वह बड़ा ही सरल और सात्विक जीवन बिताता था। गरीब-अमीर सबके लिए उसका द्वार खुला था। सवेरे और शाम को कीर्त्तन होता था। उसके बाद साधु उपदेश देता था। संतों की कहानियां सुनाता था।

एक दिन एक सेठ आश्रम में आया। शहर में उसकी किराने की बहुत बड़ी दुकान थी। उसने कीर्त्तन में भाग लिया, फिर साधु का उपदेश सुनने

लगा। साधु ने बताया कि धर्म आंखें मूंदकर ध्यान करने में नहीं है, जीवन के हरेक काम में सच्चाई और ईमानदारी बरतना धर्म है। उसने कहा, देखो, आदमी धन-दौलत इकट्ठी करता है, घर बनाता है, कुनबा जोड़ता है, पर अन्त समय कुछ भी काम नहीं आता। उसके भले-बुरे कर्म ही साथ जाते हैं।

सेठ साधु के सामने बैठा था और उनकी बातें सुन-सुनकर झूम रहा था। उससे कुछ ही दूरी पर एक चोर बैठा था, उसके कान साधु का उपदेश सुन रहे थे, पर उसकी आंखें सेठ पर लगी थीं।

साधु के प्रवचन के उपरान्त सब लोग प्रसाद लेकर चले गये। लेकिन चोर साधु की वाणी से इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपना गंदा धंधा आगे न करने का संकल्प किया और साधु के सामने शपथ लेकर चला गया।

संयोग से अगले दिन वह सेठ की दुकान से कुछ सामान लेने गया। उसने देखा कि तौल में सेठ ने डंडी मार दी। उस आदमी ने कहा, ''सेठ, यह क्या करते हो? कल तो तुम स्वामीजी के सामने झूम रहे थे। उनकी बातों को भूल गये?''

सेठ की त्यौरी चढ़ गई। बोला, ''तुम सामान खरीदने आये हो या उपदेश देने?''

उस आदमी ने कहा, ''सेठ, जो दुनिया को धोखा देता है, वह अपने को धोखा देता है। अच्छी बातें सुनो ही नहीं, गुनो भी।''

21. प्राणदाता का अधिकार

लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले की बात है। भगवान बुद्ध का एक चचेरा भाई था। उसका नाम देवदत्त था। बुद्ध जितने करुणावान थे, देवदत्त उतने ही विपरीत स्वभाव का था।

एक दिन देवदत्त ने एक पक्षी पर निशाना लगाया। वह बुद्ध की गोद में जाकर गिरा। बुद्ध ने उसे प्यार से हाथ में उठा लिया, पानी पिलाया। उसे चोट अधिक नहीं लगी थी। वह बच गया।

तभी देवदत्त बुद्ध के पास आया और उसने कहा, ''यह पक्षी मेरा शिकार है। मुझे दे दो।''

बुद्ध बोले, ''नहीं, मैं नहीं दूंगा।''

जब वह किसी प्रकार भी उसे देने को राज़ी नहीं हुए तो देवदत्त ने न्यायाधीश के यहां शिकायत की।

दोनों पक्ष न्यायाधीश के सामने उपस्थित हुए। देवदत्त का कहना था कि यह पक्षी मेरा है, मुझे मिलना चाहिए। बुद्ध का निवेदन था कि यह पक्षी मेरी गोद में आ गया और मैंने इसके प्राण बचाये, इसलिए यह मेरा है।

उस समय ऐसे मामलों के निर्णय के लिए कोई लिखित कानून तो था नहीं। न्यायाधीश ने अन्य सहयोगियों से परामर्श किया और सबने मिलकर फैसला दिया, जो व्यक्ति किसी प्राणी की जान बचाता है, वही उस प्राणी का अधिकारी होता है, न की वह,जो उसके प्राण लेने का प्रयत्न करता है। अत: यह पक्षी बुद्ध का है।''

22. हिंसा का डर

मुस्लिम संतों में एक बहुत बड़ी संत हुई हैं। उनका नाम था राबिया। यह सादगी से रहती थीं और सबको दिल से प्यार करती थीं। उनके घर का दरवाजा सबके लिए खुला रहता था।

एक बार राबिया जंगल में घूमने गई। बड़े प्रेम से वह वहां घूमने वाले जानवरों और पेड़ों पर बैठे या इधर-उधर उड़ते हुए परिन्दों को देखने लगी। इतने में बहुत-से जानवर और परिन्दे उनके इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गये। कुछ उनके बदन पर आकर बैठ गये। राबिया को बड़ा सुख मिला।

तभी एक दूसरे संत हसन बसरी वहां आ गये। उन्होंने दूर से ही

देखा कि जानवर और परिन्दे राबिया को घेरे हुए हैं तो उन्हें बड़ा अच्छा लगा। लेकिन जैसे ही वह राबिया के पास पहुंचे, सारे जानवर भाग गये, पक्षी उड़ गये।

हसन बसरी को बहुत बुरा लगा। उन्होंने मायूसी की आवाज में राबिया से कहा, ''यह क्या बात है कि इतने जानवर और परिन्दे तुम्हारे पास जमा हो गये थे और बड़ी मुहब्बत से तुम्हें घेरे हुए थे, पर मेरे आते ही सब ऐसे रफूचक्कर हो गये, जैसे मैं कोई बहुत ही ख़ूंखार आदमी हूं।''

राबिया ने उससे पूछा, ''तुम खाते क्या हो?''

हसन बसरी ने कहा, ''उससे तुम्हें क्या लेना-देना!''

राबिया बोला, ''लेना-देना है तभी तो पूछ रही हूं।''

हसन बसरी ने जवाब दिया, ''मैं गोश्त खाता हूं।''

राबिया ने कहा, ''गोश्त खाते हो और चाहते हो कि जानवर और परिन्दे तुम्हारे पास आवें! यह कैसे हो सकता है कि जिन्हें तुम मारते हो वे तुमसे डरें नहीं और भागे नहीं? जल्लाद से किसे डर नहीं लगता?''

हसन बसरी की आंखे खुल गई।

23. सबसे बड़ा धर्म

एक राजा था। उसके चार लड़के थे। एक दिन राजा ने उन्हें बुलाकर कहा, ''जाओ, किसी धर्मात्मा को खोज लाओ। जो सबसे बड़े धर्मात्मा को लावेगा, उसी को ग़द्दी पर बिठा दूंगा।''

चारों लड़के चले गये।

कुछ दिन बाद बड़ा लड़का लौटा। वह अपने साथ एक सेठ को लाया था। उसने राजा से कहा, ''यह सेठजी खूब दान पुण्य करते हैं। इन्होंने मंदिर बनवाये हैं, तालाब खुदवाये है'', प्याऊ लगवाई हैं और साधु-सन्तों को भोजन कराते हैं।''

राजा ने उनका सत्कार किया और वह चले गये।

इसके बाद दूसरा लड़का एक दुबले-पतले ब्राह्मण को लाया। बोला, ''इन्होंने चारों धामों और सातों पुरियों की पैदल यात्रा की है। व्रत करते हैं और झूठ नहीं बोलते।''

राजा ने उन्हें दक्षिणा देकर विदा किया।

फिर तीसरा लड़का एक साधु को लेकर आया। आते ही साधु ने आसन लगाया और आंखें बन्द करके ध्यान करने लगे। लड़के ने कहा, ''यह बड़े तपस्वी हैं। सात दिन में एक बार खाते हैं, और वह भी दूब, गर्मी में पंचाग्नि तापते हैं, जाड़ों में शीतल जल में खड़े होते हैं।''

राजा ने उनका स्वागत किया और वह प्रस्थान कर गये। अब बारी थी चौथे लड़के की। वह अपने साथ मैले-कुचैले कपड़े पहने एक देहाती को लाया। बोला, ''यह एक कुत्ते के घाव धो रहे थे। मैं इन्हें जानता नहीं। आप ही पूछ लीजिए कि यह धर्मात्मा हैं या नहीं।''

राजा ने पूछा, ''क्या तुम धरम-करम करते हो?''

वह बोला, ''मैं अनपढ़ हूं। धरम-करम क्या होता है, नहीं जानता। हां, कोई बीमार होता है तो सेवा कर देता हूं। कोई मांगता है तो अन्न दे देता हूं।''

राजा ने कहा, ''यही सबसे बड़ा धर्मात्मा है। सबसे बड़ा धर्म बिना किसी इच्छा के असहायों की सेवा करना है।''

24. जन्म-भूमि की सुगंधि

वाल्मीकि रामायण में एक बड़ा ही उद्बोधक प्रसंग आता है। रावण का वध और लंका-विजय के बाद राम ने लक्ष्मण से कहा, ''लक्ष्मण, तुम जाओ और विभीषण का विधिपूर्वक राजतिलक कराकर लौट आओ।''

राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण गये। उन्होंने जैसे ही उस नगरी की

शोभा और गरिमा को देखा कि मुग्ध रह गये। हरे-भरे वृक्षों, लताओं के पुष्पों से आच्छादित बाग-बगीचे, पक्षियों का कलरव, ऊंचे-ऊंचे सुन्दर भवन, कलकल निनाद करते प्रपात, एक-से-एक बढ़कर चीजें। उनकी आंखें सुन्दरता पर रीझ गईं।

लक्ष्मण ने विभीषण को गद्दी पर बिठाया और फिर लौटकर राम के पास आये। विनीत स्वर में बोले, ''महाराज, लंका ने मेरा मन चुरा लिया है। वह नगरी स्वर्ग जैसी है। आपकी आज्ञा हो तो मैं वहीं रह जाऊं।''

राम ने उनकी बात सुनी। फिर गंभीर होकर बोले, ''लक्ष्मण, इसमें कोई सन्देह नहीं कि लंका का सौंदर्य निराला है। वह सचमुच स्वर्ग नगरी है। उसमें चारों ओर समृद्धि है। प्राकृतिक सुषमा है। लेकिन लक्ष्मण, याद रखो, लंका कितनी भी सुन्दर हो, समृद्ध और वैभव से पूर्ण हो , लेकिन वह अयोध्या की बराबरी नहीं कर सकती। हमारी अयोध्या तो तीनों लोकों से बढ़कर है। जहां आदमी जन्म लेता है, वहां की मिट्टी की सुगंधि ही कुछ और होती है।''

इतना सुनते ही लक्ष्मण की आंखों पर से मायाजाल हट गया और उन्होंने देखा कि जो बात अयोध्या में है, वह लंका में नहीं है।

25. ईश्वर से साक्षात्कार

एक आदमी था। उस पर ईश्वर का साक्षात्कार करने की धुन सवार हो गई। वह एक साधु के पास गया और बोला, ''स्वामीजी, मैं ईश्वर का दर्शन करना चाहता हूं। करा सकेंगे?''

साधु ने तपाक से कहा, ''क्यों नहीं। कल सवेरे यहां आ जाना। हमलोग साथ-साथ सामने के पहाड़ की चोटी पर चलेंगे। वहां जाकर मैं तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूंगा।''

अगले दिन वह आदमी बड़े तड़के साधु के पास पहुंच गया। साधु उसकी राह देख रहे थे। बोले, ''तुम आ गये। चलो, चलें। ज़रा इस गठरी को सिर पर रख लो।''

उस आदमी ने बड़ी उमंग से गठरी सिर पर रख ली और दोनों चल दिये। पहाड़ की चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते उस आदमी के पैर थक गये। गठरी भारी लगने लगी। उसने साधु से कहा, ''स्वामीजी, मैं थक गया हूं। अब चला नहीं जाता।''

बड़े सहज भाव से स्वामीजी ने कहा, ''कोई बात नहीं है। इस गठरी में पांच पत्थर हैं। एक निकालकर फेंक दो।''

उस आदमी ने गठरी खोली। एक पत्थर निकालकर फेंका और फिर गठरी को बांध, सिर पर रख, चल दिया।

पर कुछ गज़ जाने पर फिर थकान होने लगी। अभी पहाड़ की चोटी काफी दूर थी। उसने साधु को अपनी हैरानी बताई तो साधु ने कहा, ''अच्छा, तो एक पत्थर और फेंक दो।''

दो पत्थर निकल जाने पर गठरी कुछ हल्की हो गई, लेकिन थोड़ा आगे बढ़ने पर फिर वही परेशानी सामने आ गई। साधु ने तीसरा पत्थर फिंकवा दिया, फिर चौथा और फिर पांचवां। ख़ाली कपड़े को कंधे पर डालकर वह आदमी चोटी पर पहुंच गया।

वहां जाकर उसने साधु से कहा, ''स्वामीजी, लीजिये, हम चोटी पर आ गये। अब ईश्वर से साक्षात्कार कराइये।''

गंभीर होकर स्वामीजी बोले, ''अरे मूर्ख, पांच पत्थर की गठरी उठाकर तू पहाड़ पर नहीं चढ़ सका। लेकिन अपने अंदर काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद की चट्टानें रखकर ईश्वर के दर्शन करना चाहता है!''

उस आदमी की आंखें खुल गईं।

26. राजकुमार का मोल

पुराने ज़माने की बात है। एक राजा था। उसे किसी से मालूम हुआ कि साहूकार लोग बड़े होशियार होते हैं। वे छोटी-बड़ी सब तरह की चीजों का मोल आंक लेते हैं। एक दिन राजा ने अपने मंत्री को भेजकर एक साहूकार को बुलवाया। उसके जाने पर उससे पूछा, ''क्या तुम हर चीज की कीमत कूत सकते हो।''

साहूकार ने जवाब दिया, ''चीज़ सामने हो, तो बताऊँ।''

राजा का लड़का पास ही बैठा था। राजा ने उसकी ओर संकेत कर कहा, ''इसका मोल बताओ।''

साहूकार बड़े चक्कर में पड़ा। वह चीजों की परख कर सकता था, पर आदमी की परख का तो यह पहला ही मौका था, वह भी राजकुमार की।

उसने कहा, ''महाराज, काम बहुत बड़ा है। आप मुझे एक महीने की मोहलत दीजिये।''

राजा ने कहा, ''ठीक है। एक महीने बाद यहां आकर मेरी बात का जवाब दीजिये।''

साहूकार घर लौट आया। उसने बहुतेरा सोचा, पर उत्तर नहीं सूझा। तब उसने एक बुज़ुर्ग साहूकार के पास जाकर सलाह की। उसने कहा, ''मामला बड़ा विकट है। कम बताता हूं तो राजा नाराज़ होगा। अधिक बताता हूं तो राजा पूछेगा कि इतना मोल कैसे लगाया?''

बुज़ुर्ग साहूकार सूझबूझ का आदमी था। उसने झट उपाय सोच लिया। बोला, ''तीसवें दिन जब राजा के यहां जाओ तो मुझे साथ ले चलना। मैं जवाब दूंगा।''

नियत समय पर वे लोग दरबार में पहुंचे। राजा ने कहा, ''मेरी बात का जवाब सोचा?''

बुज़ुर्ग साहूकार ने कहा, ''जवाब मैं दूंगा। आप राजकुमार को मेरे सामने खड़ा कीजिये।''

राजकुमार सामने आ गया। बूढ़े साहूकार ने उसे सामने, पीछे, अगल-बगल देखा। फिर बोला, ''दाम तो मैं ठीक-ठीक बता दूंगा, पर आप बुरा तो नहीं मानेंगे?''

राजा ने कहा, ''नहीं, बुरा क्यों मानूंगा।''

बुज़ुर्ग साहूकार ने अपनी उंगली उसके ललाट को छुआते हुए कहा, ''राजन् ललाट के लेख का तो कोई मूल्य नहीं हो सकता, वैसे राजकुमार दो आने रोज़ का मजदूर है।''

राजा समझदार था। उसे समझते देर न लगी कि क़िस्मत की कीमत कोई नहीं आंक सकता, लेकिन अगर राजकुमार मज़दूरी करे तो उसे दो आने से अधिक नहीं मिलेंगे।

27. वचन का प्रभाव

एक बार एक हिरनी झरने पर पानी पीने जा रही थी। अकस्मात एक बहेलिया उसे रास्ते में मिल गया। उसने हिरनी को मारने के लिए जैसे ही तीर चलाना चाहा कि हिरनी ने कहा, ''ठहर जाओ।''

बहेलिया ने पूछा, ''क्यों , क्या बात है?''

हिरनी बोली, ''तुम मुझे मारकर खाना चाहते हो। ठीक है, मारकर खा लेना, लेकिन मुझे थोड़ा-सा समय दे दो। मैं पानी पी लूं और घर जाकर बच्चों को प्यार करके उन्हें पति को सौंप आऊं।''

बहेलिया ने कहा, ''तुम लौटकर नहीं आई तो?''

हिरनी ने कहा, ''हमलोग पशु जाति के हैं, आदमी की जाति के नहीं। वचन देकर मुकरते नहीं।''

बहेलिया ने उसकी बात मान ली।

हिरनी ने झरने पर जाकर पानी पिया और दौड़ी-दौड़ी घर पहुंची। घर जाकर उसने बच्चों और पति को सारा किस्सा कह सुनाया। बच्चों ने

कहा, ''मां, तुम बहेलिया को वचन देकर आई हो, इसलिए तुम्हारा दूध मुक्त नहीं है, बंधा है। हम नहीं पीवेंगे।''

हिरन ने कहा, ''सुनो, तुम्हारे बिना घर चलना मुश्किल है। सो तुम घर पर रहो, मैं बहेलिये के पास चला जाता हूं।''

हिरनी बोली, ''यह नहीं होने का। वचन में मैं बंधी हूं, तुम नहीं। फिर मैं जान-बूझकर विधवा क्यों बनूं!''

पति-पत्नी अपनी बात पर अड़े रहे। अंत में दोनों बहेलिये के पास जाने लगे। तभी बच्चों ने कहा, ''हम यहां किसके पास रहेंगे? जहां तुम वहां हम।''

नतीजा यह हुआ कि चारों प्राणी बहेलिये के पास पहुंचे। बहेलिया उनकी राह देख रहा था। हिरनी ने कहा, ''लो, मैं आ गई और तीन को और साथ ले आई हूं। अब तुम चारों को मार डालो।''

बहेलिये ने अपने सामने खड़े उन चारों प्राणियों को देखा। अपने वचन पर दृढ़ रहने के कारण हिरनी की आंखें चमक रही थीं और उसके पति और बच्चों के चेहरों पर डर नहीं, प्रेम छलछला रहा था।

बहेलिये के हाथ से तीर धरती पर गिर पड़ा, उसका सिर झुक गया और वह लज्जित होकर जिधर से आया था, उधर चला गया।

28. मोतियों की फसल

किसी नगर में एक राजा रहता था। वह बड़ा भला था। अपनी प्रजा की भलाई का उसे बहुत ध्यान रहता था। रानी के साथ रथ में बैठकर वह प्रायः यह देखने के लिए घूमता रहता था कि उसकी प्रजा को कोई कष्ट तो नहीं है, उसे सरकारी अधिकारी तंग तो नहीं कर रहे हैं।

एक दिन राजा घूमते हुए शहर के बाहर चला गया। देखता क्या है

कि एक खेत में किसान हल चला रहा है। हल में एक ओर को बैल जुता है, दूसरी ओर उसकी स्त्री हल को खींच रही है।

यह देखकर राजा को बुरा लगा। दुःख भी हुआ। वह रथ से उतरकर किसान के पास गया और बोला, ''सुनो भाई, तुम यह क्या कर रहे हो? बैल का काम स्त्री से ले रहे हो?''

किसान ने निगाह उठाकर उसकी ओर देखा, कहा, ''मैं क्या करूं। मेरा एक बैल मर गया है और मुझे खेत की बुवाई करनी है।''

इतना कहकर वह आगे बढ़ गया।

राजा ने कहा, ''थोड़ा रुककर मेरी बात तो सुन लो।''

किसान बोला, ''मेरे पास समय नहीं है। मुझे शाम तक सारे खेत में बीज बो देने हैं।''

राजा बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, ''मेरा एक बैल ले लो।''

चलते-चलते किसान बोला, ''तुम तो कह रहे हो, पर तुम्हारी घरवाली ने नहीं माना तो?''

''अपनी स्त्री को भेज दो।'' राजा ने कहा, ''वह बात कर आवेगी।''

किसान मुंह बनाकर बोला, ''उसके जाने से काम जो रुक जायगा, मेरा हर्जा होगा न!''

राजा ने गंभीर होकर कहा, ''जब तक वह लौटेगी, उसकी जगह मैं हल खींच दूंगा।''

किसान राज़ी हो गया। उसने स्त्री को रानी के पास भेज दिया और राजा हल खींचने लगा।

स्त्री ने रानी के पास जाकर सारी बात कह सुनाई। सुनते ही रानी बोली, ''बहन, तुम्हारा बैल बूढ़ा है। हमारा बैल जवान है। दोनों साथ कैसे चलेंगे?''

किसान की स्त्री ने कहा, ''तुम अपना बैल नहीं देना चाहती हो तो मत दो। बहाना क्यों बनाती हो? साफ़ कह दो।''

रानी बोली, ''नहीं बहन, तुमने मुझे ग़लत समझा है। मेरे कहने का

मतलब यह नहीं है कि मैं तुम्हें बैल नहीं देना चाहती। मेरे कहने का मतलब यह है कि तुम एक नहीं, दोनों बैलों को ले जाओ।''

किसान की स्त्री चकित रह गई। रानी ने दोनों बैल उसे दे दिये। वह उन्हें लेकर अपने पति के पास आ गई और उन बैलों की मदद से उन्होंने शाम तक सारे खेत में बीज डाल दिये।

किसान ख़ुश था कि उसका काम पूरा हो गया। राजा ख़ुश था कि वह मुसीबत के समय में उसे सहारा दे सका।

कुछ दिन बाद फसल उगी। बड़ी हुई। उस पर दाने लगे। किसान ने देखा, जितनी धरती में राजा ने हल खींचा था और उसके पसीने की बूंदें टपकी थीं, उतनी धरती की फ़सल पर अनाज नहीं, मोती लगे हैं।

किसान ने अपनी आंखें मलीं। उसे कहीं भ्रम तो नहीं हो रहा है। पर वे सचमुच मोती ही थे।

जब किसान आश्चर्य में भरकर खड़ा था, कहीं से आवाज़ आई, ''जब राजा खेत में पसीना बहाता है, तो मोतियों की ही फ़सल उगती है।''

29. मन का बोझ

किसी गांव में एक बुढ़िया रहती थी। वह चरखे पर सूत काता करती थी। उसके घर में पांच-सात आदमी थे। बुढ़िया के काते सूत से कपड़ा बुना जाता था और घर के सारे लोगों के कपड़े तैयार हो जाते थे। उसके खेत में कपास हो जाती थी। जिन गांवों में किसी कारण कपास कम होती थी, वहां दूसरे गांवों में बैलगाड़ियों में लादकर कपास या रुई पहुंचा दी जाती थी।

एक दिन बुढ़िया जब कताई कर रही थी, उसके घर के सामने से बहुत-सी गाड़ियां गुज़रीं। उनमें रुई भरी हुई थी। उन्हें देखकर बुढ़िया चकित रह गई। उसके मन में विचार आया, इतनी रुई कौन कातेगा?

इस विचार के आते ही वह इस क़दर हैरान हुई कि उसकी नींद जाती रही, भूख मारी गई। हर घड़ी एक ही रट लगी रहती थी, इतनी रुई कौन कातेगा? उसका कातना बंद हो गया।

यह देखकर घर के लोग परेशान हो गये। गांव में एक बड़ा ही चतुर आदमी रहता था। वे बुढ़िया को उसके पास ले गये। उसे सारा हाल सुनाकर घर वालों ने कहा, ''फ़ौरन कोई उपाय कीजिये, नहीं तो बड़ा अनर्थ हो जायगा।''

चतुर आदमी ने कुछ देर सोचा फिर कहा, ''अच्छी बात है। मैं जल्दी ही कोई रास्ता निकाल दूंगा।''

अगले दिन उस चतुर आदमी ने किया क्या कि उस बुढ़िया के पास पहुंचा और बोला, ''माई, तुमने सुना?''

बुढ़िया ने पूछा, ''क्या?''

उस आदमी ने कहा, ''अरे, क्या बताऊं! हाल ही में यहां से बैलगाड़ियां निकली थीं न।''

बुढ़िया बोली, ''हां-हां, उन पर रुई लदी थी।''

''माई, उन गाड़ियों में आग लग गई। सारी रुई जलकर राख हो गई।'' उस आदमी ने धीरे-से कहा।

बुढ़िया ने चैन की सांस ली। बोली, ''अच्छा हुआ। किस्सा निबट गया। इतनी रुई को कोई कब तक कातता!''

बुढ़िया के मन का बोझ दूर हो गया। वह फिर अपने काम में लग गई।

30. गुण का मूल्य

किसी नगर में एक प्रदर्शनी हो रही थी। एक आदमी उसे देखने गया। नाना प्रकार की वस्तुएं वहां दिखाई गई थीं। तरह-तरह की चीज़ों की

दुकानें थीं। घूमते-घूमते उसके पैर एक दुकान के आगे ठिठक गये। उस पर दो पुतलियां रखी थीं। बड़ी सुन्दर थीं। चेहरे उनके बहुत ही आकर्षण थे और पोशाक उनकी बड़ी ही मोहक थी।

उस आदमी ने उन्हें बड़े ध्यान से देखा। दोनों बिल्कुल एक-सी थीं। शक्ल-सूरत और कपड़ों में रत्ती भर फ़र्क न था, यहां तक कि दोनों के जेवर भी एक-से थे।

अचानक उस आदमी की निगाह उन दोनों पुतलियों के मूल्य पर गई। वह विस्मय से भर उठा। एक के नीचे पांच सौ और दूसरी के नीचे पांच लाख रुपया लिखा था। उसने आंखें मलीं। फिर देखा, पर वही दाम उसे दिखाई दिया, ''नहीं'', उसने सोचा, ''धोखा उसकी आंखों को नहीं हुआ है। यह दुकानदार की ग़लती है। एक-सी मूर्तियों के दामों में इतना फ़र्क कैसे हो सकता है?''

उसने दुकानदार से कहा, ''सुनो भाई, इन पुतलियों के दाम लिखने में तुमसे भूल हो गई दीखती है। एक का दाम पांच सौ और दूसरी का पांच लाख, जबकि दोनों एक सी हैं! यह कैसे हो सकता है?''

दुकानदार ने कहा, ''नहीं, दाम ठीक ही लिखा है। यह पुतली पांच सौ की ही है और वह पांच लाख की।''

''सो कैसे?'' उस आदमी ने और चकित होकर पूछा।

''इस तरह।'' कहकर दुकानदार ने एक सींक ली और पांच सौ रुपये वाली पुतली के कान में डाली। सींक दूसरे कान से पार निकल गई। इसके बाद उसने वही सींक दूसरी पुतली के कान में डाली, लेकिन वह आरपार नहीं हुई। बीच में रुक गई।

दुकानदार बोला, ''क्यों, देख लिया दोनों का अंतर? यह पांच सौ वाली, पुतली धर्म की बात एक कान से सुनती है, दूसरे कान से निकाल देती है और यह पांच लाख की पुतली धर्म की बात को निकल नहीं जाने देती, रोककर रखती है।''

31. मानव मानव एक समान

आनंद भगवान बुद्ध के प्रमुख शिष्य थे। वह बड़े उदार थे। मनुष्यता उनमें कूट-कूटकर भरी थी। वह सबको प्रेम करते थे। उनके लिए कोई भी छोटा या बड़ा नहीं था।

एक बार आनंद कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्हें बड़े जोर की प्यास लगी। उन्होंने इधर-उधर देखा, लेकिन कहीं भी पानी दिखाई नहीं दिया। वह प्यास के मारे बेचैन हो गये। छटपटाने लगे। तभी उनकी निगाह थोड़ी दूर पर एक कुंए पर गईं। वह बड़ी आशा से वहां पहुंचे। एक लड़की पानी भर रही थी। आनंद ने उसके पास जाकर कहा, ''बहन, मैं बड़ी दूर से आ रहा हूं। मुझे बड़ी प्यास लगी है। पानी पिला दो।''

भिक्षु की बात सुनकर लड़की कांप उठी। वह चांडाल-कन्या थी। उसे पता था कि कोई भी ऊंची जाति का आदमी उसके हाथ का पानी नहीं पी सकता। अब वह क्या करे?

उसने निगाह नीचे कर ली और चुपचाप खड़ी रही।

आनंद ने बड़े व्याकुल स्वर में कहा, ''बहन, तुमने सुना नहीं। मैं बहुत ही प्यासा हूं। मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। मुझे पानी पिलाओ।''

लड़की ने सहमते हुए सिर उठाया। कुछ कहना चाहा, पर शब्द उसके मुंह से बाहर नहीं निकले। उसके ओंठ हिलकर रह गये।

आनंद ने कहा, ''बहन,बात क्या है?''

तब वह लड़की बोली, ''भगवन, मैं आपको पानी कैसे पिलाऊं?''

''क्यों?'' आनंद ने उत्सुकता से पूछा।

''भगवन!'' वह रुकते-रुकते बोली, ''मैं चांडाल-कन्या हूं। पानी आपको कैसे पिला सकती हूं?''

आनंद ने कहा, ''बहन, मैंने तुमसे पानी मांगा हैं, जाति तो नहीं मांगी।''

उनके शब्दों में जादू था। चांडाल-कन्या ने उन्हें पानी पिलाया और सदा के लिए अमर हो गई।

32. संत की सीख

एक बार एक डाकू गुरु नानक के पास आया और उनके चरणों में गिरकर बोला, ''महाराज, मैं अपने जीवन से परेशान हो गया हूं। जाने कितनों को मैंने लूटकर दुखी किया है, उनके घरों को तबाह किया है। मुझे रास्ता बताइये, जिससे मैं इस बुराई से बच सकूं।''

नानक ने बड़े प्रेम से कहा, ''इसमें क्या बात है। बुराई करना छोड़ दो, उससे बच जाओगे।''

डाकू ने उनकी बात सुनी। बोला, ''अच्छी बात है। मैं कोशिश करूंगा।''

डाकू चला गया। कुछ दिन बाद वह फिर लौटकर आया। बोला, ''गुरुजी, मैंने बुराई को छोड़ने की बहुत कोशिश की, लेकिन छोड़ नहीं पाया। अपनी आदत से मैं लाचार हूं। मुझे और कोई उपाय बताइये।''

गुरु नानक ने थोड़ी देर सोचा। फिर बोले, ''अच्छा, ऐसा करो कि तुम्हारे मन में जो भी बात उठे, उसे कर डालो, लेकिन रोज़-के-रोज़ उसे दूसरे लोगों से कह दो।''

डाकू को बड़ी ख़ुशी हुई। इतने बड़े संत ने जो मन में आवे सो कर डालने की आज्ञा दे दी। अब वह बेधड़क डाका डालेगा और दूसरों से कह देगा। यह तो बहुत ही आसान है। वह खुशी-खुशी उनके चरण छूकर घर लौट गया।

कुछ दिन बीते कि वह फिर गुरु नानक के सामने पहुंचा। नानक ने उसे देखा तो पूछा, ''कहो भाई, अब तुम्हारा क्या हाल है?''

डाकू बोला, ''गुरुजी, आपने मुझे जो उपाय बताया था, मैंने बहुत

आसान समझा था, लेकिन वह निकला बड़ा मुश्किल। बुरा काम करना जितना मुश्किल है, उससे कहीं ज्यादा, मुश्किल है दूसरों के सामने अपनी बुराइयों को कहना। गुरुजी, उसमें तो बहुत कष्ट होता है।''

इतना कहकर डाकू चुप हो गया। फिर बोला, ''दोनों में से अब मैंने आसान रास्ता चुना है। डाका डालना ही छोड़ दिया है।''

33. पुरुषार्थ का फल

एक लड़की थी। जन्मी अच्छी तरह, पर उस पर कुछ ही समय में किसी रोग ने आक्रमण किया और उसके नेत्रों की ज्योति चली गई, सुनने की शक्ति नष्ट हो गई, वाणी लुप्त हो गई। लड़की तो छोटी थी, कुछ समझती नहीं थी, लेकिन उसके माता-पिता को बड़ी हैरानी हुई कि उनकी बेटी अपनी लम्बी ज़िन्दगी कैसे गुजारेगी। किन्तु उनकी परेशानी अधिक दिन नहीं रही। लड़की ज्यों-ज्यों बड़ी होती गई, उसके अन्तर-चक्षु खुलते गये। उसे एक अच्छी अध्यापिका मिल गई, जिसने उसके आत्म-विश्वास और पुरुषार्थ को जगा दिया। अदम्य उत्साह, धैर्य और अध्यव्यवसाय से उस बहन ने उच्च शिक्षा प्राप्त की, स्नातिका की उपाधि अर्जित की, डॉक्टर ऑव लॉ से सम्मानित हुई और अपनी लेखनी से उसने सारे संसार को चमत्कृत कर दिया।

पढ़ाई-लिखाई के साथ उसने तैरना सीखा, घुड़सवारी करना सीखा और नाव खेना सीखा। इतना ही नहीं, उसने शतरंज और ताश का भी अच्छा अभ्यास कर लिया।

वह कहीं भी रुकी नहीं, बाधाओं को चीरकर रास्ता निकालती गई, आगे बढ़ती गई, अपनी जीवनी में उसने लिखा:

''अगर उल्लंघन के लिए रेखाएं न होतीं, जीतने के लिए बाधाएं न होतीं, पार करने के लिए सीमाएं न होतीं तो मानव-जीवन में पुरस्कार की

तरह आनेवाले आनंद के अनुभव में कुछ-न-कुछ कमी अवश्य आ जाती।''

एक अन्य स्थान पर वह लिखती है:

''सुख का एक द्वार बंद होने पर दूसरा खुल जाता है, लेकिन कई बार हम बंद द्वार की ओर इतनी देर तक ताकते रहते हैं कि जो द्वार हमारे लिए खोल दिया गया है, उसे देख नहीं पाते।''

यह नेत्रहीन, मूक, बधिर बहन थी हेलन केलर, जिसने अपने पुरुषार्थ, साहस और परिश्रम से ऐसी प्रतिभा प्राप्त की, जो प्रत्येक युवक और युवती के लिए आदर्श-रूप है। उसने सारे संसार का भ्रमण किया। बड़ी प्रेरणादायक आत्मकथा लिखी।

उस बहन का सम्पूर्ण जीवन मानो शतमुख से कहता है, ''कभी हिम्मत न हारो, निराशा को पास न फटकने दो, मजबूत कदमों से आगे बढ़ते चलो, जिस चरम शिखर पर पहुंचना चाहते हो,पहुंच करके ही रहोगे।''

34. वह दुर्लभ पूंजी

उस समय की बात है जब दक्षिण अफ्रीका से गांधीजी भारत लौटने की तैयारी कर रहे थे। आश्रम के एक भाई ने उनसे पूछा, ''भारत में हम कहां रहेंगे?''

गांधीजी ने उत्तर दिया, ''जहां अनुकूल और उचित स्थान होगा, वहीं रहेंगे।''

दूसरे भाई ने कहा, ''हम नये हैं। ऐसी दशा में देश-सेवा का क्या काम करेंगे?''

गांधीजी बोले, ''जहां रहेंगे, वहां एक खेत ले लेंगे। उसमें खेती करेंगे, बुनेंगे, आसपास की गंदगी साफ करेंगे और भगवान की प्रार्थना करके वातावरण को शुद्ध और पवित्र करेंगे।''

तीसरे ने कहा, ''आपने सूचना दी है कि भारत में आप काठियावाड़ की पगड़ी, अंगरखा और धोती पहनेंगे। चाहेंगे कि हम भी वही देहाती पोशाक पहनें। हमारे देहाती ढंग को देखकर क्या लोग निराश नहीं होंगे?''

गांधीजी ने जवाब दिया, ''निराश क्यों होंगे? हमें अपनी ही पोशाक में देखकर उनमें हमारे प्रति विश्वास पैदा होगा। हमारी इस पोशाक से पढ़े-बेपढ़े लोगों के बीच का अंतर दूर होगा। हम उनके अधिक नज़दीक पहुंच सकेंगे और उनके सुख-दुःख को जल्दी समझकर उसमें भाग लेने की भी कोशिश करेंगे।''

चौथे भाई ने कहा, ''बापूजी, आप एक अहिंसक लड़ाई जीतकर देश में जायंगे। अपनी गुलामी दूर करने के लिए लोग आपसे योद्धा मांगेंगे। आप उनके सामने किसे रखेंगे?''

गांधीजी का जवाब था, ''उस समय मैं अपने योद्धाओं को जनता के सामने पेश करूंगा। कहूंगा, यह रहे मेरे योद्धा, जिन्होंने देश की सेवा के लिए कष्ट भुगतकर जेल को महल माना है, गरीबी का व्रत लेकर अपना जीवन अर्पण करने का निश्चय किया है। ये हैं मेरे सिपाही, जो ज़रूरत पड़ने पर बीमारों की सेवा करेंगे, भूखे पेट रहकर अपना रोटी का टुकड़ा दूसरे के मुंह में डाल देंगे, लोगों के मल-मूत्र साफ़ करने में भी जी नहीं चुरावेंगे। भारत के लिए राजा-महाराजा, राय बहादुर खान बहादुर, वकील और बैरिस्टर काम नहीं आवेंगे। काम आवेंगे प्राण निछावर करने वाले लोग, त्यागी वीर और वीरांगनाएं, सारा जीवन देश-सेवा की आग में तपा देने वाले साधु चरित्र, निडर, विरोधियों की गोली छाती पर झेलनेवाले और फांसी के तख्ते पर दौड़ते-दौड़ते चढ़ जाने वाले और सत्याग्रही योद्धा। मेरे पास जो पूंजी है, वह तो मैं देश के चरणों में रख दूंगा, लेकिन यह भी देखूंगा कि सारे देश में इतनी पूंजी और कितनी है!''

35. सावधान रहो

एक बुढ़िया थी। वह कहीं जा रही थी। उसके सिर पर एक पोटली रखी थी। पोटली भारी थी। बुढ़िया थक गई। सोचने लगी कि उसे किसी का सहारा मिल जाय तो अच्छा है।

तभी घोड़े पर सवार एक आदमी उधर से निकला। बुढ़िया की जान-में-जान आ गई। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा, ''ओ भाई, मैं बड़ी हैरान हो गई हूं। थोड़ी दया करो। इस पोटली को अपने घोड़े पर रख लो। मुझे आगे के गांव जाना है। वहीं उसे ले लूंगी।''

घुड़सवार को जल्दी थी। उसने बुढ़िया की ओर देखा और बोला, 'मुझे इतनी फुरसत नहीं कि किसी का बोझ ढोता फिरूं!''

इतना कहकर वह आगे बढ़ गया।

बेचारी बुढ़िया को बड़ा बुरा लगा। कैसा पत्थर के दिल का आदमी था यह! उसने सोचा। कम्बख़्त को मुझ बुढ़िया पर ज़रा भी तरस नहीं आया। अरे, इस पोटली को घोड़े पर रख लेता तो उसका क्या बिगड़ जाता?

तभी बुढ़िया से जैसे किसी से कहा, ''अरी मूर्ख, जो हुआ, अच्छा हुआ। तू तो उस आदमी को जानती नहीं थी। तेरी पोटली को लेकर वह भाग गया होता तो क्या कर लेती!''

बुढ़िया ने चैन की सांस ली। पोटली में उसके चांदी के गहने थे। यदि पोटली चली गई होती तो वह कहीं की न रहती।

उधर घोड़ेवाले से कुछ दूर जाते ही जैसे किसी ने कहा, ''अरे, मूर्ख, तूने हाथ में आई चीज़ खो दी। पोटली को ले लेता और चलता बनता!''

यह सोचकर उसने घोड़े को लौटाया और बुढ़िया के पास आकर बोला, ''माफ़ करना माई, मैंने बड़ी गलती की। पोटली को कौन मुझे अपने सिर पर रखना था? ला, अब दे दे। अगले पड़ाव पर ले लेना।''

बुढ़िया अब सावधान हो गई थी। घुड़सवार की नीयत ताड़ गई।

बोली, ''नहीं भैया, अब यह पोटली मैं तुमको नहीं दूंगी। जिसने तुम्हें यह अक़्ल दी, उसने मुझे भी अक़्ल दे दी। जो सावधान नहीं होता, वह धोखा खाता है।''

घुड़सवार ने समझ लिया कि अब बुढ़िया उसके चक्कर में आनेवाली नहीं है। वह पछताता हुआ अपने रास्ते चला गया।

36. विष-वृक्ष

एक राजा था। उसने एक बड़ा सुन्दर बगीचा बनाया उसमें नये प्रकार के पौधे लगाये। सत्य का, प्रेम का, ईमानदारी का, सच्चाई का, धर्म का, भक्ति का, ज्ञान का आदि।

इन पौधों की राजा स्वयं देखभाल करता। उनमें खाद देता, उनमें पानी लगाता।

पौधे बड़े होने लगे। उन पर कलियां आई और फूल खिले। उन फूलों में ऐसी महक थी कि बगीचा ही नहीं, सारा नगर और राजा का सारा राज्य महक उठा।

चारों और राजा की बड़ाई होने लगी। उसका जय-जयकार होने लगा। राजा फूलकर कुप्पा हो गया।

कुछ ही दिनों में राजा ने देखा, बगीचे में एक नन्हा-सा पौधा अपने आप उग आया है। बड़े-बड़े पौधों के बीच उस पौधे का क्या मूल्य हो सकता था! राजा ने उस ओर ध्यान नहीं दिया।

जब वह पौधा तेजी से बढ़ने लगा तो राजा ने उसे उखाड़ने की कोशिश नहीं की। सोचा, कोई बात नहीं है। पड़ा रहने दो।

थोड़े दिन बीते कि उसने एक वृक्ष का रूप धारण कर लिया। उस पर फूल खिले। फूल इतने सुन्दर थे कि जो भी देखता, देखता रह जाता।

लेकिन उनमें इतनी भयंकर दुर्गंध थी कि लोगों को सहन करना कठिन था। वे नाक बंद कर लेते।

राजा हैरान था कि यह वृक्ष कौन-सा है कि जिसके फूल तो इतने सुन्दर हैं, पर जिसकी गंध इतनी असह्य है! उसने बहुतों से पूछा, पर कोई नहीं बता सका।

एक दिन एक साधु राजा के यहां आया। राजा ने उसे वह वृक्ष दिखाया और पूछा कि वह किस चीज का है?

साधु ने इस पर निगाह डाली, फिर हँसकर बोला, ''राजन, यह अहंकार का विष-वृक्ष है। इसे लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। यह अपने आप उग आता है और बड़ी तेजी से बढ़ता है। इसके फूल बड़े लुभावने होते हैं, लेकिन इनकी बदबू इतनी होती है कि दूसरे सब फूलों की खुशबू को मिट्टी में मिला देती है। राजन, इससे जो बचता नहीं, उसकी वैसी ही हालत होती है, जैसीकि आपके बगीचे की हुई है।''

37. महानता का रहस्य

नेपोलियन बहुत बड़ा सम्राट हुआ है। वह बड़ा पराक्रमी था। बड़ा योद्धा था। उसने बहुत-सी लड़ाइयां लड़ीं और उनमें जीता।

पराक्रमी होने के अतिरिक्त नेपोलियन में बहुत-से गुण थे। नींद पर उसका इतना अधिकार था कि घोड़े की पीठ पर बैठा-बैठा वह घंटों सो लेता। उसके साथ कोई कुछ भलाई कर देता तो वह उसे कभी भूलता नहीं था। जिन दिनों वह स्कूल में पढ़ता था, उसे फल खाने का शौक था। कभी-कभी उसके पास पैसे नहीं होते थे तो एक फलवाली भलीमानस बुढ़िया उसे फल उधार दे देती थी। उसके कुछ पैसे देने को रह गये तो सम्राट हो जाने के बाद नेपोलियन एक दिन उस शहर में गया और उसकी

दुकान पर जाकर न केवल उसके पैसे चुकाये, उसके लड़के को सैनिक स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया।

आखिर नेपोलियन वाटर लू की लड़ाई में पराजित हो गया। उसे सेंट ऐल्बा में बंदी बनाकर रखा गया।

नेपोलियन को टहलने की आदत थी। एक दिन शाम को वह टहलने निकला। उसकी परिचारिका साथ थी। थोड़ा आगे निकलने पर परिचारिका ने देखा, सामने से एक वृद्धा अपने सिर पर कुछ सामान रखे चली आ रही है। पगडंडी संकरी थी। उसने बढ़कर वृद्धा से कहा, ''सम्राट आ रहा है। एक तरफ हो जाओ।''

नेपोलियन ने यह सुना तो बोला, ''मदाम, बूढ़े और बोझ से दबे व्यक्ति का आदर करो।''

इतना कहकर वह स्वयं पगडंडी के एक ओर खड़ा हो गया और बुढ़िया को रास्ता दे दिया।

बिना बड़े हृदय के कोई महान नहीं बन सकता।

38. अपने ही घर में आओ

एक बार एक सज्जन महर्षि रमण के पास गये। कुछ देर इधर-उधर की बात करके बोले, ''महाराज, हम बड़ी हैरानी में हैं।''

महर्षि ने उनकी ओर देखा। पूछा, ''क्यों, हैरानी की क्या बात है?''

उन सज्जन ने कहा, ''हमारे देश में जितने बड़े-बड़े संत पुरुष हुए हैं, वे आत्मा, परमात्मा, जगत आदि के विषय में पृथक-पृथक मार्ग बताते हैं। कोई कहते हैं कि आत्मा परमात्मा एक है। कोई कहते हैं कि वे एक-दूसरे से अलग हैं। कोई कहते हैं कि परमात्मा से भिन्न कोई सत्ता नहीं है और कोई कहते हैं कि मैं ही ब्रह्म हूं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत कुछ कहा जाता है। इस सबको पढ़कर हमारा मन तो भ्रम में पड़ गया है। सभी

के अपने-अपने दावे हैं। अब आप ही बताइये कि इतने रास्तों में से हम किसे चुनें, किस पर चलें?''

महर्षि रमण ने उनकी बात बड़े ध्यान से सुनी, लेकिन तत्काल उत्तर नहीं दिया।

उन्हें चुप देखकर उन सज्जन ने कहा, ''महाराज, हम आपका मार्ग-दर्शन चाहते हैं।''

महर्षि ने सिर उठाया और बड़े ही शान्त स्वर में उत्तर दिया, ''अपने ही घर में आओ। खोजो कि तुम कौन हो। खोजते-खोजते एक दिन यथार्थ तुम्हारे हाथ लग जायगा।''

39. कोरा ज्ञान

एक तत्ववेत्ता थे। उनके पास पुस्तकों का अनंत भण्डार था। संसार के सभी दर्शनों का उन्होंने अध्ययन किया था। वह बराबर पढ़ने में लगे रहते थे। जो भी उनके पास आता था, उसे वह तात्विक ज्ञान देने का प्रयत्न करते थे।

उनके निवास-स्थान के पास ही एक नदी थी। नदी पर बांध बनाकर एक जलाशय का निर्माण किया गया था। जलाशय के स्वच्छ पानी में वह नित्य स्नान किया करते थे। जलाशय में लहरें अठखेलियां किया करती थीं। उनको देखकर दार्शनिक महोदय का मन-कुरंग छलांगे लगाने लगता था। उनका जी होता था कि वह उन सुहावनी लहरों को अपने अंक में समेट लें, किन्तु एक कठिनाई थी, वह तैरना नहीं जानते थे। इसलिए किनारे पर बैठकर ही स्नान कर लेते थे।

एक दिन उनके किसी भक्त ने एक पेटी लाकर दी और कहा कि इसे आप अपने पेट पर बांध लेंगे तो कितने ही गहरे पानी में चले जाएं, डूबेंगे नहीं, पानी की सतह पर उतराते रहेंगे।

पेटी पाकर और उसकी विशेषता जानकर दार्शनिक को बड़ा हर्ष हुआ। अगले दिन वह पेटी को लेकर जलाशय पर गये और उसे हाथ में पकड़कर बड़े उत्साह से अथाह जल में कूद पडे।

ज्यों ही कूदे कि एकदम पानी के अंदर चले गये। फिर उनके हाथ और पेटी तो पानी की सतह पर आ गये, किन्तु वह स्वयं पानी के भीतर। अब क्या हो?

संयोग से एक आदमी उनके निकट ही स्नान कर रहा था। वह अच्छा तैराक था। उसने उन्हें डूबते देखा तो वह एक सपाटे में उनके पास पहुंचा और उन्हें खींचकर किनारे पर ले आया। एक क्षण में यह सब हो गया।

दार्शनिक की चेतना अभी लुप्त नहीं हुई थी। वह घबराये हुए किनारे पर बैठ गये। सुस्थिर हुए तो उन्होंने पूछा, 'क्यों भाई,यह पेटी तो आदमी को पानी में डूबने नहीं देती! मैं कैसे डूब गया?''

वह आदमी हँसा। बोला, ''महाराज, कोरा ज्ञान ही काफी नहीं है। व्यवहार भी आना चाहिए। यह पेटी तभी, मदद करती है जब पेट पर बांध ली जाती है। आपने देखा नहीं, पेटी और आपके हाथ डूबे नहीं थे, पानी की सतह पर थे।

एक आदमी के प्राण बच गये, इससे उस भाई को जहां संतोष था, वहां उसे यह सोचकर थोड़ा दु:ख भी था कि कोरा ज्ञान कितना खतरनाक होता है।

40. सब समान

एक बार इन्द्र, वायु अग्नि मिलकर बैठे तो उनमें बड़ा वाद-विवाद चल पड़ा। इन्द्र बोला, ''मैं तुम सबसे श्रेष्ठ हूं। मैं वर्षा करता हूं, इससे पृथ्वी हरी-भरी रहती है, जीवधारी जीवित रहते हैं।''

वायु ने कहा, "तुम यह क्या कहते हो? बिना पानी के काम चल सकता है। यदि हवा न हो तो जीना दूभर हो जाय, इसलिए मैं तुमसे श्रेष्ठ हूं!"

अब अग्नि की बारी थी। उसने कहा, "इतनी डींग क्यों मारते हो! सबसे पहले गर्मी चाहिए। गर्मी न रहे तो आदमी ठंडा पड़ जाता है। इसलिए तुम दोनों मेरा मुकाबला नहीं कर सकते।"

बहस चलती रही, पर कोई निर्णय नहीं हो पाया। तभी एक देवी वहां आई। उसने उनसे झगड़े का कारण पूछा। सबने अपनी-अपनी बात कह दी। तब देवी ने इन्द्र से कहा, "तुम तो सबकुछ बहा देते हो! लो, इस तिनके को बहा दो।"

इन्द्र ने पूरा जोर लगाकर वर्षा की, पर तिनका अपनी जगह से हिला तक नहीं।

तब देवी ने वायु से कहा, "तुम तो पहाड़ों को भी उखाड़ देती हो! लो, इस तिनके को उड़ा दो।"

वायु ने पूरे वेग से अपना पराक्रम किया, पर तिनका जहां-का-तहां रहा।

तब देवी ने अग्नि को परीक्षा का अवसर दिया। जो सब-कुछ भस्म कर डालती थी, वह तिनके का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकी।

सबके पराजित हो जाने पर देवी मुसकराकर बोली, "तुम सब अभिमान किस बात का करते हो? तुम्हें शक्ति देनेवाला और कोई है। उसी की शक्ति से पानी बरसता है हवा चलती है और लोगों को गर्मी लगती है। अगर वह शक्ति तुमसे छिन जाए तो फिर तुम क्या कर सकोगे? बेजान हो जाओगे। याद रखो, प्रभु की इस सृष्टि में न कोई छोटा है, न बड़ा सब समान हैं।"

41. मानव-सेवा का मूल्य

एक भिक्षु था। उसे कोई भारी रोग लग गया। वह चलफिर नहीं सकता था। अपने मल-मूत्र में लिपटा पड़ा रहता था। उसके साथी भिक्षु उसे देखकर घृणा से मुंह फेर लेते थे। कोई भी उसके पास नहीं फटकता था। बेचारा बहुत ही हैरान था।

अचानक बुद्ध को मालूम हुआ कि उस भिक्षु की हालत ख़राब है तो वह अपने शिष्य आनंद को साथ लेकर वहां पहुंचे। उसकी दुर्दशा देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने भिक्षु से पूछा, "तुझे क्या रोग है?"

भिक्षु ने उत्तर दिया, "मुझे पेट की बीमारी है।"

"तुम्हारी परिचर्या करने वाला कोई नहीं है?" बुद्ध ने करुण स्वर में प्रश्न किया।

"नहीं, भंते," उसने बेबसी से कहा, "मेरी परिचर्या करने वाला कोई नहीं है।"

बुद्ध ने तत्काल अपने शिष्य से कहा, "आनंद, जाओ, पानी ले आओ। हमलोग इस भिक्षु की सफाई करेंगे।"

आनंद गये और पानी ले आये। इसके बाद बुद्ध ने पानी डाला और आनंद ने उसके मल-मूत्र को साफ़ किया। अच्छी तरह धो-पोंछकर बुद्ध ने भिक्षु के सिर को पकड़ा, आनंद ने पैरों को और उठाकर उसे चारपाई पर लिटा दिया। फिर बुद्ध ने सारे भिक्षुओं को इकट्ठा करके उन्हें संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओ, तुम्हारे माता नहीं, पिता नहीं, भाई नहीं, बहन नहीं, जो तुम्हारी सेवा करेंगे। यदि तुम आपस में एक-दूसरे की सेवा, एक-दूसरे की देखभाल नहीं करोगे, तो फिर कौन करेगा?"

"भिक्षुओ, याद रखो, जो रोगी की सेवा करता है, वह मेरी ही सेवा करता है।"

42. सज्जनता और दुर्जनता

एक बार एक साधु अपने शिष्यों के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में वह एक गांव में रुके। गांव वालों ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। उनकी सब प्रकार से सेवा की। उन्हें किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं होने दिया।

अगले दिन जब वह जाने लगे तो गांव वालों ने कहा, ''स्वामीजी, कुछ उपदेश तो देते जाइये।''

स्वामीजी बोले, ''उजड़ जाओ।''

इस शिक्षा से गांव वाले चकित रह गये। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया। फिर भी कुछ लोग साधु के साथ श्रद्धा-भक्ति से चल दिये।

चलते-चलते साधु एक दूसरे गांव में ठहरे। उस गांव के लोगों को मालूम हुआ तो वे दौड़े आये और उन्होंने साधु को बुरा-भला कहकर और पत्थर मारकर वहां से निकाल दिया।

चलते समय साधु ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा, ''बस जाओ।''

साधु के इस व्यवहार से लोग विस्मित रह गये। जहां लोगों ने उनकी इतनी आवभगत की, उन्हें तो उजड़ जाने का उपदेश दिया और जहां लोगों ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया, वहां बस जाने का आशीर्वाद दिया। आखिर माजरा क्या है?

उन्होंने साधु के सामने अपनी जिज्ञासा प्रकट की तो साधु बोले, ''देखो, पहले गांव के लोग बड़े सज्जन थे। वे जहां कहीं जायंगे, अपनी सज्जनता से दूसरों को प्रभावित करेंगे। इसलिए मैंने उन्हें आशीर्वाद दिया कि गांव को छोड़ दो, जिससे दूसरी जगह सज्जनता का प्रसार हो। लेकिन इस गांव के लोग दुष्ट हैं। जहां जायंगे, वहीं दुष्टता फैलावेंगे। इसलिए मैंने इन्हें उपदेश दिया कि यहीं रहो और कहीं मत जाओ, जिससे दुष्टता यहीं तक सीमित रहे।''

43. धर्म-संकट

एक सेठ थे। उनका जीवन बड़ा विचित्र था। वह सट्टा खेलते थे। दांव सीधा पड़ जाता था तो उनके हाथ में लाखों आ जाते थे। दांव उल्टा पड़ जाता था तो लाखों के कर्जदार हो जाते थे। मजे की बात यह थी कि न जीतने पर गर्व करते थे और न हारने पर दुःख मानते थे।

इसके साथ ही एक विशेष बात उनमें यह भी थी कि मुट्ठी में पैसा आ जाता था तो वह उसे रोकते नहीं थे। तत्काल जरूरतमंदों को दे डालते थे, जैसे वह कोई अवांछनीय वस्तु हो। कहते थे कि तिजोरियों में बंद पैसा बंधे हुए पानी की तरह सड़ांद पैदा करता है।

सेठ का सारा जीवन इसी प्रकार बीता। न उन्होंने अपने लिए मकान बनाया और न उन्होंने कोई कल-कारखाना खोला। सादगी से रहते, सादगी से खाते-पीते और चैन की नींद सोते। उनकी पत्नी ने उनके लिए हीरे की एक अंगूठी बनवा दी थी। वही उनकी उंगली में पड़ी रहती।

एक बार की बात कि उन्होंने सट्टा खेला। उसमें उनका सबकुछ चला गया। अचानक उनका ध्यान हाथ की अंगूठी पर गया। उसे भी वह दांव पर लगाने वाले थे कि उनके अंतर से किसी ने कड़ककर कहा, ''क्या करता है? यह अंगूठी तेरी नहीं, तेरी पत्नी की अमानत है।''

सेठ का हाथ रुक गया। किन्तु उनके मन का समाधान नहीं हुआ। वह पत्नी के पास गये। उसकी अमानत लौटा देनी चाही, पर उसने वापस लेने से इंकार कर दिया। बोली, ''इसे मैं तो आपको दे चुकी। इसका जो चाहो, करो।'' कहते-कहते सेठानी की आंखे डबडबा आई। उन आंसुओं ने अंगूठी को और भी मूल्यवान बना दिया। अंगूठी का मूल्य हो सकता था, किंतु पत्नी की ममता तो अनमोल थी।

इसके बाद सेठ ने किया क्या कि वह दौड़े-दौड़े अपने गुरु के पास गये और उस अंगूठी को उतारकर उनके चरणों पर रख दिया। बोले, ''महाराज, यह भेंट स्वीकार करें।''

गुरु ने अंगूठी को लेने से इंकार कर दिया। तब सेठ ने कहा, ''महाराज, मुझे आप भारी धर्म-संकट से बचा लीजिये। यह अंगूठी मेरी पत्नी की दी हुई है। इसमें उसका ममत्व जुड़ा है। यह किसी भी घड़ी सट्टे में चली जायेगी।''

गुरु ने सेठ की व्यथा को समझा और उनकी भेंट को स्वीकार कर लिया।

सेठ के सिर का बोझ उतर गया। वह भारी दिल से गये थे, हल्के दिल से लौटे।

44. एक ग्रंथ का चमत्कार

एक बड़े ही विद्वान व्यक्ति थे। शिक्षा-विभाग में निरीक्षक का कार्य करते थे। चारों ओर उनकी प्रतिष्ठा थी। सभी क्षेत्रों में उन्हें प्रेम और आदर प्राप्त था। सब उन्हें 'शास्त्रीजी' कहते थे।

उनके परिवार में कोई लड़का नहीं था। वह स्वयं निस्संतान थे। उनके भाई के बस एक लड़की थी।

संयोग से एक दिन वह लड़की कहीं खो गई। बहुत खोजी, पर नहीं मिली। परिवार में हाहाकार मच गया। शास्त्रीजी को इतना धक्का लगा कि उनकी आंखों की ज्योति समाप्त हो गई। बाद में लड़की मिल गई, पर शास्त्रीजी के नेत्रों के प्रकाश गया तो चला ही गया।

कुछ दिन शास्त्रीजी बड़े दुःखी रहे, फिर उन्होंने एक मार्ग निकाला। उन्होंने एक भाई को कुछ सहायता देकर अपने पास रखा और उससे अच्छे-अच्छे ग्रंथों को पढ़वाकर सुनने लगे।

एक दिन एक ऐसा ग्रंथ उनके सामने आया कि उनका हृदय, जो अंधकार से आच्छादित हो गया था, एकदम प्रकाश से जगमगा उठा। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो आनंद का अवरुद्ध स्रोत खुल गया है।

उन्होंने उस ग्रंथ को कई बार पढ़वाकर सुना। फिर उन्हें इतनी अंतर्प्रेरणा हुई कि उन्होंने उसका संस्कृत तथा हिन्दी में बड़ा सुन्दर पद्यानुवाद किया। इस अनुवाद से उन्हें तो आनंद मिला ही, जाने कितने पाठकों के हृदय आलोकित हो गये।

यह ग्रंथ था तमिल के महान संत तिरुवल्लुवर का 'कुरल'[1] और उसके अध्ययन से जिनके अंतःचक्षु खुले, वह थे पं. गोविंद राय शास्त्री।

45. हिंसा की भूख

एक बार संत तुकड़ोजी गांधीजी के आश्रम में एक महीना रहने आये। गांधीजी ने उन्हें अपने पास ही ठहराया। वह उनके कीर्तन में सम्मिलित होते और उनसे विचार-विनिमय करते।

एक दिन गांधीजी ने उन्हें अपनी बात समझाने के लिए एक कहानी सुनाई। एक गरीब आदमी था और एक पैसेवाला आदमी था। दोनों के घर आसपास थे। एक दिन ग़रीब के घर में चोर आ गये। ग़रीब की आंख खुल गई। उसने देखा कि चोर इधर-उधर परेशान होकर चीजें खोज रहे हैं। वह उठा और बोला, ''आप क्यों हैरान होते हैं। मेरे पास जो कुछ है, वह मैं अपने आप लाकर दिये देता हूं।'' इतना कहकर उसके पास जो दस-पांच रुपये थे, वे उनके हवाले कर दिये।

चोरों ने उस आदमी की ओर अचरज से देखा और रुपये लेकर चलते बने। पर उतने से उनका मन नहीं भरा। लोभ दूर नहीं हुआ। वे धनी आदमी के यहां पहुंचे। वह पहले से ही जाग रहा था। उसने उनकी बातें सुन ली थीं। सोचा, 'जब ग़रीब ऐसा कर सकता है तो वह क्यों नहीं कर

---

1. यह ग्रंथ हिन्दी गद्य में सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा 'तमिल वेद' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

सकता।' उसने चोरों से कहा, ''आप लोग बैठो। मेरे पास जो कुछ है, वह मैं तुम्हें दिये देता हूं।'' फिर उसने अपनी जमा-पूंजी लाकर उनको सौंप दी।

चोरों को काटो तो खून नहीं। उनके अंदर राम जाग उठा। अमीर-ग़रीब का सारा माल छोड़कर वे चले गये और अपना धंधा त्यागकर साधु बन गये।

यह कहानी सुनाकर गांधीजी ने कहा, ''मैं हिंसा के मुख में अहिंसा को इसी तरह झोंक देना चाहता हूं। आखिर कभी तो हिंसा की भूख शांत होगी। अगर दुनिया को शान्ति से जीना है तो मेरी जानकारी में इसका दूसरा और कोई रास्ता नहीं है।''

46. रोग का कारगर इलाज

आचार्य काका साहेब कालेलकर गांधी-विचार के प्रमुख व्याख्याता, मौलिक चिन्तक, उच्चकोटि के लेखक और महान शिक्षा-विद् थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि वह जीवन के अप्रतिम कलाकार थे। उनकी निगाह बड़ी पैनी थी और उनका चिन्तन बहुत ही गहन था।

एक बार वह अस्वस्थ हो गये। मैंने सुना तो मुझे बहुत चिन्ता हुई। बीमार होना अप्रत्याशित घटना थी। वह निरंतर यात्रा करते रहते थे और उनका लेखन अबाध गति से चलता रहता था। उनके रुग्ण होने का अर्थ था– इस सबमें व्यवधान पड़ना।

मैंने उन्हें फोन किया। पूछा, ''काका साहेब, आपकी तबीयत कैसी है?''

बोले, ''अच्छी है।''

''सुना है, आप बीमार हो गये थे?''

''हां, तबीयत कुछ खराब हो गई थी। पर जब से मैंने नई 'पैथी' (चिकित्सा) की है, मुझे बहुत फ़ायदा हुआ है।''

मैंने उत्सुकता से पूछा, ''नई पैथी? वह क्या है?''

बोले, ''बात यह है कि मैंने सभी पैथियां आजमाई–एलोपैथी, होमियोपैथी, नेचरोपैथी, पर किसी से भी आराम ना हुआ। तब मैंने सोचा, अब क्या किया जाय? सोचते-सोचते एक नई पैथी समझ में आई...''

कहते-कहते वह थोड़ा रुक गये। मेरी उत्सुकता और बढ़ गई। मैंने पूछा, ''नई पैथी! कौन-सी?''

बोले, ''ऐपैथी।''

किंचित विराम के बाद उन्होंने कहा, ''मैंने रोग के बारे में सोचना ही छोड़ दिया। यह चिकित्सा बड़ी कारगर सिद्ध हुई। आप जानते हैं कि किसी की मेहमानदारी करो तो वह खुश होता है, और अधिक दिन तक टिकता है। उसे घर का मान लो तो उसे आदर-सत्कार नहीं मिलता और वह कोई दूसरी जगह खोजता है, जहां उसे मेहमानदारी मिल सके। रोग के बारे में भी ऐसा ही है।''

काका साहेब की बात सही थी। रोग जितना हैरान करता है, उससे अधिक रोग की चिन्ता करती है।

47. वह ऐतिहासिक घटना

सन् 1917 की बात है। राष्ट्रीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। उसी के साथ राष्ट्रभाषा सम्मेलन भी किया गया। सम्मेलन के सभापति थे लोकमान्य तिलक। उसमें सभी बड़े-बड़े नेता भाग लेने आये थे। सम्मेलन में कई नेताओं के भाषण हुए। सब अंग्रेजी में बोले, यहां तक कि सभापति का भाषण भी अंग्रेजी में हुआ। गांधीजी उन दिनों हिन्दी

अच्छी नहीं बोल पाते थे। उनके बोलने की बारी आई तो वह हिन्दी में ही बोले। उन्होंने कहा, ''लोकमान्य हमारे सबसे बड़े नेता हैं। वह चाहे जो करें, उसका महत्त्व है, परन्तु राष्ट्रभाषा सम्मेलन का सभापति विदेशी भाषा में बोले तो वह राष्ट्रभाषा सम्मेलन कैसा?''

लोकमान्य तिलक ने अंग्रेजी में कहा, ''आपका कहना ठीक है, मेरी लाचारी है कि मैं तनिक भी हिन्दी नहीं जानता।''

गांधीजी बोले, ''आप मराठी तो जानते हैं। संस्कृत तो जानते हैं। ये हमारे देश की भाषाएं हैं। और ये सरोजिनी नायडू तो बहुत अच्छी उर्दू जानती हैं। क्या इनके लिए अंग्रेज़ी में ही बोलना जरूरी था।''

गांधीजी का इतना कहना था कि वहां का सारा वातावरण ही बदल गया। फिर तो कोई व्यक्ति अंग्रेजी में नहीं बोला।

शाम को जब लोकमान्य तिलक का भाषण हुआ तो वह हिन्दी में ही बोले। उन्होंने कहा, ''आज मैं पहले-पहल हिन्दी में बोल रहा हूं। मेरी भाषा में कितनी ग़लतियां होंगी, मैं नहीं जानता, लेकिन मैं मानता हूं कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है और हमें अपना काम हिन्दी में ही करना चाहिए।''

आठ दशक पूर्व की वह ऐतिहासिक घटना आज कितनों को याद है? पर आज भी उसका महत्त्व है।

48. जरा-सी बात

एक युवक था। विलायत में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। उसके पिता बहुत बड़े आदमी थे। वह अपने एकमात्र पुत्र को बैरिस्टर बनाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने उसे विदेश भेजा था।

पुत्र के मन में पिता के लिए बड़ा आदर था। पिता के मन में भी पुत्र के लिए अनन्त प्रेम था। दोनों एक-दूसरे के साथ बड़े घनिष्ठ रूप में जुड़े थे।

एक दिन पिता का पत्र आया। युवक ने उसे पढ़ा। पिता ने लिखा था कि तुम्हें जो पैसा मिलता है, उसे किस प्रकार ख़र्च करते हो? मुझे पूरा हिसाब भेजा करो।

बात छोटी-सी थी, लेकिन युवक को लगा कि उसके स्वाभिमान पर गहरी चोट हुई है। साफ था कि पिता का उसके प्रति अविश्वास है। युवक का रोम-रोम बेचैन हो उठा। अब वह क्या करे?

काफ़ी सोच-विचार के बाद उसने निश्चय किया, उसे पिता को लिख देना चाहिए कि यदि आपको मुझ पर भरोसा नहीं है तो आगे से आप मुझे पैसा न भेजें। मैं जैसे होगा, अपना काम चला लूंगा, नहीं तो हिन्दुस्तान लौट आऊंगा।

इससे पिता को बड़ा सदमा पहुंचेगा।... पहुंचे, आख़िर मेरा भी तो कुछ आत्म-गौरव है।

भारी अंतर्द्वंद्व के बाद युवक ने पत्र लिख ही दिया।

पिता को पत्र मिला। पर वह बड़े बुद्धिमान थे। उन्होंने बेटे की भावना को समझा और दुःखी होने के बजाय आनंदित हुए कि उनके बेटे में इतना स्वाभिमान है।

उन्होंने बड़ी होशियारी से अपने युवा पुत्र को समझाकर लिख दिया। लिखा कि उनकी मंशा यह नहीं थी कि वह उसके आत्म-गौरव को ठेस पहुंचावें। वह तो केवल यह जानना चाहते थे कि आख़िर इतना ख़र्चा कैसे हो जाता है।

आंधी का जो हल्का-सा झोंका आया था, उसे पिता के वात्सल्य ने क्षणभर में दूर कर दिया। युवक का समाधान हो गया। उसके मन का बोझ उतर गया।

वह युवक थे जवाहरलाल नेहरू।

49. लड़के की समझदारी

एक लड़का था। वह बड़ा सच्चा और ईमानदार था। एक दिन वह एक पड़ोसी के घर गया। पड़ोसी कहीं गया था। उसके यहां एक टोकरी में बहुत-से सेब रखे थे। बड़े बढ़िया सेब थे। लड़के को सेब बहुत अच्छे लगते थे। लेकिन उसने उनको हाथ तक नहीं लगाया।

पड़ोसी लौटा तो देखा, सारे सेब ज्यों-के-त्यों रखे हैं। उसने लड़के से पूछा, ''क्यों, तुम्हें सेब पसंद नहीं हैं क्या?''

लड़के ने कहा, ''मुझे सेब बेहद पसंद हैं।''

पड़ोसी आश्चर्यचकित होकर बोला, ''तो तुमने लिये क्यों नहीं?''

लड़के ने कहा, ''कैसे ले सकता था?''

पड़ोसी बोला, ''क्यों , इसमें क्या बात थी? कोई देखने वाला तो था नहीं!''

''इससे क्या हुआ!'' लड़के ने कहा, ''कोई दूसरा देखने वाला हो या न हो, मैं तो देख रहा था। मैं अपने को बेईमानी करते देखना हर्गिज़ बर्दाश्त नहीं कर सकता था!''

पड़ोसी इस बात को सुनकर गद्‌गद हो गया। उसने कहा, ''तुम ठीक कहते हो। आत्मा सबमें है और वह हमारे भले-बुरे, सब कामों को देखती रहती है।''

50. धर्म क्यों?

एक साधु थे। अपनी कुटिया में रहते थे। उनके पास तरह-तरह के लोग आते रहते थे। साधु उनकी कठिनाइयों को सुनते थे और बड़ी समझदारी से उनका हल सुझाते थे।

एक दिन एक सेठ उनके पास आया। उसकी ख़ूब कमाई थी।

ख़ूब पैसा उसकी तिजोरियों में भरा था। वह सोचता था, आदमी को धन चाहिए। बिना धन के जीवन नहीं चल सकता। लेकिन धर्म के बिना तो कोई काम रुकता नहीं। फिर भी उसकी दुहाई दी जाती है! यह क्या बात है?

उसने अपनी शंका साधु के सामने रखी, पर साधु ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सेठ कुछ दिन साधु के साथ रहने आया था। लगा, फिर किसी दिन जवाब देंगे। रात हुई। दीपक जलाया गया। धीरे-धीरे रात और बढ़ी। सेठ ने पूछा, ''महाराज, दीपक क्यों जल रहा है?''

साधु ने उत्तर दिया, ''इसलिए कि अंधेरा है।''

सेठ को नींद नहीं आ रही थी। थोड़ी देर बाद उसने साधु से पुनः पूछा, ''महाराज, दीपक कबतक जलता रहेगा?''

साधु तपाक से बोला, ''जबतक अंधेरा रहेगा।''

इतना सुनकर सेठ की शंका का अपने आप समाधान हो गया। उसे इस प्रश्न का कि धर्म की क्या जरूरत है, उत्तर मिल गया। उसके भीतर से आवाज आई, ''धर्म की इसलिए जरूरत है, क्योंकि अधर्म है। जबतक अधर्म रहेगा, धर्म की जरूरत बनी रहेगी।''

51. अहैतुकी भक्ति

एक दिन कुछ लोग संत राबिया के पास आए। उनमें से एक से राबिया ने पूछा, ''तुम ईश्वर की भक्ति किस लिए करते हो?''

उसने कहा, ''मुझे नरक से बड़ा डर लगता है। उससे बचने के लिए मैं ईश्वर की भक्ति किया करता हूं।''

राबिया ने यही सवाल दूसरे आदमी से किया। उसने उत्तर दिया, ''बात यह है कि मुझे स्वर्ग बड़ा अच्छा लगता है। वह बड़ा सुन्दर है

और वहां तरह-तरह के भोग और सुख है। मैं उसे पाने के लिए ही भक्ति किया करता हूं।''

राबिया ने उनकी बात सुनकर कहा, ''अच्छा, यह बताओ कि अगर स्वर्ग या नर्क न होता तो क्या तुम लोग ईश्वर की भक्ति करते?''

वे लोग इसका कोई उत्तर न दे सके।

तब राबिया ने कहा, ''सच्चे भक्त तो न नर्क की परवा करते हैं, न स्वर्ग की। उनकी भक्ति किसी मतलब से नहीं होती। वह तो अहैतुकी हुआ करती है।''

52. धर्म-चक्रवर्ती

उस समय की बात है जब भगवान महावीर घरबार और राजपाट के वैभव को त्यागकर साधना के मार्ग पर चल पड़े थे। उनके पास कुछ भी नहीं था, केवल शरीर था, और था चैतन्य। वह शरीर को आवश्यक पोषण देते थे, शरीर उन्हें आवश्यक शक्ति देता था। चैतन्य से उन्हें आनंद प्राप्त होता था, पुरुषार्थ मिलता था। वह एक स्थान से दूसरे स्थान का भ्रमण करते थे और रात को किसी एकान्त जगह में ध्यान-लीन हो जाते थे।

उन दिनों पुष्य नाम का एक बहुत बड़ा ज्योतिषी था। उसका नाम चारों ओर फैला था। दूर-दूर के लोग अपना भविष्य जानने के लिए उसके पास आते थे। उसकी विद्या अचूक थी। उसका ज्ञान सत्य सिद्ध होता था।

संयोग से एक दिन पुष्य घूमता-घामता गंगा के किनारे पहुंचा। उसकी बालू पर उसे किसी के चरण-चिह्न दिखाई दिए। उन चिह्नों को उसने ध्यान से देखा तो चकित रह गया। अपने ज्ञान के आधार पर उसने अनुभव किया वे चिह्न किसी चक्रवर्ती के हैं। लेकिन यह कैसे हो सकता है? उसके अन्तर से किसी ने तर्क किया? चक्रवर्ती और अकेला, यह हो नहीं सकता। पर उसकी विद्या भी तो झूठी नहीं हो सकती। वह असमंजस में पड़ गया।

कुछ देर वह वहीं बैठा-बैठा सोचता रहा, फिर उन चिह्नों का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ गया।

चलते-चलते वह देखता क्या है कि एक आदमी ध्यान की मुद्रा में खड़ा है। उसने उसके चरणों को देखा, फिर चिह्नों को देखा। वे उन्हीं चरणों के चिह्न थे। उसने चकित होकर उस व्यक्ति के पैरों से सिर तक निगाह डाली।

''बड़ी विचित्र बात है।'' उसने मन-ही-मन कहा, ''इसके शरीर के लक्षणों से पता चलता है कि यह चक्रवर्ती है, लेकिन इसकी चर्या और स्थिति से मालूम होता है कि यह साधारण आदमी है!''

बेचारा पुष्य हैरानी में पड़ गया। उसका ज्ञान कुछ कह रहा था, सामने उसे कुछ और दिखाई दे रहा था। वह अपने से जूझने लगा।

थोड़ी देर में भगवान महावीर की ध्यान-मुद्रा खुली तो उसने विनत होकर अपनी जिज्ञासा व्यक्त की, ''भन्ते, आप अकेले कैसे हैं?''

महावीर ने उसकी ओर देखकर कहा, ''संसार में आदमी अकेला आता है और अकेला जाता है। कोई भी उसका साथ नहीं देता।''

पर उनके इस उत्तर से पुष्य की उलझन दूर नहीं हुई। उसने जो पूछा था, वह अपनी समस्या को सुलझाने के लिए पूछा था। उसने महावीर से कहा ''आप ज्ञान की बात कर रहे हैं। मैं व्यवहार की बात जानना चाहता हूं।''

महावीर बोले, ''मैं अकेला कहां हूं? मेरा सारा परिवार मेरे साथ है।''

पुष्य ने कौतूहल से कहा, ''परिवार साथ है। कहां है?''

महावीर ने कहा, ''देखो, निर्विकल्प ध्यान (संबर) मेरा पिता है, अहिंसा मेरी मां है, ब्रहाचर्य मेरा भाई है, अनासक्ति मेरी बहन है, शान्ति मेरी प्रिया है, विवेक मेरा पुत्र है, क्षमा मेरी पुत्री है, सत्य मेरा मित्र है, उपशय मेरा गृह है। अब तुम्हीं बताओ कि मैं अकेला कैसे हूं?''

पुष्य की पहेली सुलझी नहीं। उसने कहा, ''भन्ते, आपके शरीर के लक्षण बताते हैं कि आप चक्रवर्ती हैं, लेकिन वैसे आप साधारण व्यक्ति

मालूम होते हैं। मेरे ज्योतिष के ज्ञान ने मुझे कभी धोखा नहीं दिया। इस समय मेरे सामने जीवन-मरण का प्रश्न है।''

महावीर ने कहा, ''अच्छा, यह बताओ कि चक्रवर्ती कौन होता है ?''

पुष्य ने कहा, ''वह , जिसके आगे-आगे चक्र चलता है।''

''और ?''

''जिसकी विशाल सेना को संरक्षण देने के लिए छत्र-रत्न होता है।''

''और ?''

''जिसके पास धर्म-रत्न होता है, जिसमें सवेरे बोया बीज शाम तक पक जाता है।''

भगवान महावीर ने कहा, ''ठीक है। अब तुम जिधर भी देखो, धर्म-चक्र मेरे आगे-आगे चल रहा है। मेरा आचार छत्ररत्न है, जो समस्त मानव-जाति को संरक्षण दे रहा है। मेरी भावना धर्म-रत्न है। उसमें जिस क्षण बीज डालो, पक जाता है ?''

यह सब सुनकर पुष्य की गुत्थी सुलझ गई।

भगवान महावीर ने आगे कहा, ''अब यह बताओ कि क्या मैं चक्रवर्ती नहीं हूं ? क्या तुम्हारे ज्योतिष में धर्म-चक्रवर्ती का कोई स्थान नहीं है ?''

पुष्य आनंद से पुलकित हो उठा। झूठी सिद्ध होने पर वह अपनी विद्या को सदा के लिए तिलांजलि देने का संकल्प करके वहां आया था। अब उसकी आवश्यकता नहीं रही थी।

उसने भगवान महावीर के चरणों में अपनी श्रद्धा अर्पित की और जिधर से आया था, उधर चला गया।

भगवान महावीर राजगृह की ओर बढ़ गए।

53. अनर्थ की जड़

शेख़ फरीद एक बहुत बड़े सन्त हुए हैं। उनकी मां ने उन्हें बचपन में सिखाया कि बेटे, भूखे मर जाना, पर किसी के आगे हाथ मत फैलाना।

शेख की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह अगले दिन की चिन्ता नहीं करते थे। मानते थे कि जिसने आज के लिए दिया है, वह कल के लिए भी देगा। उनका नाम चारों ओर फैल गया।

एक दिन एक धनिक उनके पास आया और उन्हें चांदी की बहुत-सी मुद्राएं दे गया। शेख़ ने अपने एक शिष्य से कहा, ''इन सबको गरीबों में बांट दो।''

शिष्य ने यही किया। जब वह उन्हें बांट रहा था; एक मुद्रा नीचे गिर गई। सारी मुद्राएं बंट गई तो उसका ध्यान नीचे पड़ी मुद्रा की ओर गया। उसने मुद्रा को उठाकर रख लिया। सोचा, बाद में किसी को दे देगा। फिर वह भूल गया।

शाम को शेख़ नमाज पढ़ने बैठे तो और दिन की तरह उसका मन नहीं लगा। कुछ बेचैनी-सी रही। तभी उन्होंने अपने शिष्य से पूछा, ''क्यों, मैंने जो मुद्राएं तुम्हें दी थीं, वे सब तुमने बांट दी थीं ?''

शिष्य को अचानक याद आया कि एक मुद्रा बच रही थी और वह उसके पास है। उसने यही बात उनसे कह दी और गलती के लिए माफी मांगी।

शेख़ ने कहा, ''सबसे पहले जाओ और उस मुद्रा को किसी गरीब को दे आओ।''

शिष्य फौरन उठ खड़ा हुआ, बाहर गया और एक जरूरत-मंद को मुद्रा देकर लौट आया। उसके बाद शेख़ ने चैन की सांस ली और नमाज पढ़ी तो उनका दिल ठीक वैसे ही लगा, जैसे कि और दिन लगा करता था। उन्हें खूब आनन्द आया। ठीक ही कहा गया है ''अर्थ अनर्थ की जड़ होता है।''

54. करुणा और प्रेम

साबरमती आश्रम की बात है। एक दिन रात को एक चोर आ गया। चोर नासमझ था, नहीं तो आश्रम में चुराने के लिए भला क्या था!

संयोग से कोई आश्रमवासी जग गया। उसने धीरे-से कुछ और लोगों को जगा दिया। सबने मिलकर चोर को पकड़ लिया और कोठरी में बंद कर दिया। बापू सो रहे थे। सोते रहे।

अगले दिन आश्रम में इस घटना की चारों ओर चर्चा हो गई कि रात को चोर आ गया था और उसे पकड़कर कोठरी में बंद कर दिया गया है। सब उत्सुक थे कि देखें, आगे क्या होता है!

व्यवस्थापक ने यह खबर बापू को दी और चोर को उनके सामने पेश किया। बापू ने निगाह उठाकर उसकी ओर देखा। वह नौजवान सिर झुकाये आतंकित खड़ा था कि बापू उससे नाराज होंगे और हो सकता है कि पुलिस को सौंप दे। आखिर उसने अपराध तो किया ही था!

लेकिन बापू ने जो किया, उसकी तो वह स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था! बापू ने उससे पूछा, ''क्यों, तुमने नाश्ता किया?''

कोई उत्तर न मिलने पर उन्होंने व्यवस्थापक की ओर प्रश्न भरी मुद्रा में देखा। व्यवस्थापक ने कहा, ''बापू! यह तो चोर है! नाश्ते का सवाल ही कहां उठता है!''

बापू का चेहरा गम्भीर हो आया। दुःख भरे स्वर में बोले, ''क्यों, क्या यह इंसान नहीं है? इसे ले जाओ और नाश्ता कराओ।''

व्यवस्थापक, जिसे चोर मानकर लाये थे, वह अब एक क्षण में इन्सान बन गया था। उसकी आंखों में प्रायश्चित्त के आंसू बह रहे थे।

धर्म-ग्रन्थों में हम पढ़ते हैं कि करुणा ने बुद्ध को बुद्ध बनाया, प्रेम ने महावीर को महावीर बनाया, किंतु हमने अपने युग में देखा कि करुणा और प्रेम ने गांधी को बापू बना दिया।

55. कथनी और करनी

प्रभु ईसा का जीवन बड़े ऊंचे दर्जे का था। उसमें सादगी, प्रेम, करुणा, क्षमा, विनय, सेवा आदि गुण बहुत बड़ी मात्रा में थे। उनकी सबसे

बड़ी विशेषता यह थी कि उनकी कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं था।

वह अपने पास आने वाले लोगों से कहा करते थे, ''मैं जो कुछ कहता हूं, उसे सुनो और अपने जीवन में उतारो।''

इसी बात को एक बार उन्होंने एक बड़ा ही सरल पर प्रेरक दृष्टान्त देकर समझाया :

एक आदमी था। उसने अपना घर चट्टान के ऊपर बनवाया। बड़े जोर का पानी बरसा, आंधिया चलीं, उसके घर से टकराईं, लेकिन उस घर का कुछ भी बिगाड़ न कर सकीं।

एक दूसरा आदमी था, जिसने अपना घर बालू पर बनवाया। आया मेह, चलीं आंधिया और वह घर ढहकर मिट्टी में मिल गया।

ईसा ने कहा, ''जो मेरी बातें सुनता है और उन पर चलता है, वह समझदार आदमी की तरह है, जो चट्टान पर अपना घर बनवाता है। लेकिन जो आदमी मेरी बातें सुनता तो है, पर उन पर अमल नहीं करता, वह उस मूर्ख की तरह है, जो बालू पर अपना घर बनवाता है। जरा-सा पानी पड़ता है, आंधी आती है कि घर ढह जाता है।''

56. संत का संदेश

भूदान-यज्ञ के दिनों की बात है। संत विनोबा पद-यात्रा करते हुए अजमेर पहुंचे थे। वहां एक अमरीकी भाई उनसे मिले और बोले, ''मैं अमरीका वापस जा रहा हूं। आपका संदेश चाहता हूं।''

विनोबा ने कहा, ''मेरा संदेश! मैं तो बहुत छोटा आदमी हूं। तुम्हारा देश बहुत बड़ा है। मैं क्या संदेश दूं?''

उन भाई ने हार नहीं मानी। बोले, ''नहीं, आप बहुत बड़े आदमी हैं। सत्य, प्रेम और करुणा की मूर्ति हैं। हमारे देशवासियों को आपके संदेश से नई प्रेरणा मिलेगी।''

विनोबा ने थोड़ी देर मौन रहकर कहा, "अपने देश में जाकर तुम लोगों से कहो कि बाबा चाहता है कि वे अपने कारखानों में 364 दिन तक खूब हथियार बनावें, भयंकर-से-भयंकर हथियार बनावें। तुम्हारे कारखानों और आदमियों को काम चाहिए। काम नहीं होगा, तो बेरोजगारी फैलेगी। इसलिए जितने हथियार बना सको, बनाओ, लेकिन 365 वें दिन उन सारे हथियारों को समुद्र में फेंक दो।"

वह भाई विनोबा के मुंह की ओर देखते रह गये। उन्होंने जो कुछ कहा था, उसके पीछे एक बहुत बड़ी सच्चाई छिपी हुई थी।

हिंसा-हिंसा को जन्म देती है और हिंसा को हिंसा से नहीं, अहिंसा से दबाया जा सकता है।

57. कल करे सो आज कर

पांडव पांच भाई थे। उनमें सबसे बड़े थे युधिष्ठिर। वह हमेशा सच बोलते थे। इसलिए सब उन्हें 'सत्यवादी' कहा करते थे।

एक दिन युधिष्ठिर किसी काम में लगे थे। तभी कोई महात्मा उनके पास आये। उन्होंने उनसे कुछ मांगा। लेकिन युधिष्ठिर ने कहा, "आज मेरे सामने बहुत काम है। आप कल आ जाइये। मैं आपकी इच्छा पूरी कर दूंगा।"

यह सुनकर महात्मा उठकर बाहर चले गये।

युधिष्ठिर के छोटे भाई भीम आनंद से भरकर दरवाजे पर खड़े थे। उन्होंने बड़े भाई की बात सुनी तो लोगों से कहा, "घंटा और घड़ियाल बजाओ।"

उनके यह कहते ही घंटे-घड़ियाल बजने लगे।

युधिष्ठिर ने जब बाजों का शोर सुना तो भीम से पूछा, "यह सब क्या है?"

भीम ने उत्तर दिया, "आपने काल को जीत लिया है। उस विजय के उपलक्ष्य में ये मंगलवाद्य बज रहे हैं।"

युधिष्ठिर ने कुछ क्षुब्ध और कुछ विस्मित होकर पूछा, "मैंने काल को जीत लिया है, यह तुमसे किसने कहा?"

विनत स्वर में भीम बोले, "अभी आपके मुंह से सुना है।"

युधिष्ठिर ने और भी चकित होकर कहा, "मेरे मुंह से सुना है?"

"जी हां," भीम तपाक से बोले, "सब जानते हैं कि आप सत्यवादी हैं। कभी झूठ नहीं बोलते। आपने अभी एक महात्मा को वचन दिया है कि कल उनकी इच्छा पूरी कर देंगे। इससे साफ है कि कल तक तो आपने काल को जीत ही लिया होगा।"

भीम की बात सुनकर युधिष्ठिर मुसकरा उठे। उन्होंने महात्मा को वापस बुलाया और उनका काम उसी घड़ी कर दिया।

58. उद्‌बोधन

एक राजकुमार था। वह बड़ा ही घमंडी और उद्दण्ड था। उसके मुंह से सदा कठोर वचन निकलते रहते थे। राज्य के लोग उसके दुर्व्यवहार से बहुत तंग और हैरान थे। राजा उसे बहुत समझाता था, लेकिन उस पर कोई असर ही नहीं होता था। विवश होकर राजा बुद्ध के पास गया और उन्हें अपनी हैरानी कह सुनाई। बुद्ध ने उसे सांत्वना देकर कहा, "घबराओ नहीं। सब ठीक हो जायेगा।"

इसके बाद एक दिन राजकुमार बुद्ध से मिलने आया। बुद्ध ने उससे कहा, "सामने के पौधे पर से कुछ पत्तियां तोड़ लाओ।"

राजकुमार पत्तियां तोड़ लाया।

बुद्ध बोले, "इन्हें खा लो।"

राजकुमार ने ज्योंही पत्तियां मुंह में डाली कि थूक दीं। इतना ही नहीं, वह दौड़कर गया और उसने उस पौधे को उखाड़कर फेंक दिया।

बुद्ध ने पूछा, ''क्यों, क्या हुआ?''

राजकुमार ने कहा, ''इस पौधे की पत्तियां कड़वी हैं। आगे चलकर यह पौधा विषवृक्ष बन जायगा। इसी से मैंने इसे उखाड़ दिया।''

बुद्ध मुसकराये। बोले, ''राजकुमार, तुम लोगों से कड़वी बातें कहते हो। अगर वे भी तुम्हारे दुर्व्यवहार से क्षुब्ध होकर वही करें, जो तुमने इस पौधे के साथ किया है तो क्या नतीजा निकलेगा?''

राजकुमार को अपनी भूल अनुभव हुई और उस दिन से उसने अपना व्यवहार बदल दिया।

59. दुर्लभ साधना

एक दार्शनिक थे। उनका विवाह हुआ और अगले दिन से ही वह एक ग्रंथ की रचना में लग गये। उस काम में वह ऐसे खो गये कि उनको ध्यान ही न रहा कि उनका विवाह हो चुका है और तरुणी उनके जीवन के साथ बंधी हुई है।

सौभाग्य से पत्नी बड़ी भली थी, बड़ी समझदार थी। उसने देखा कि पति किसी कार्य में संलग्न है तो उसने उनके ध्यान या एकाग्रता को भंग करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इतना ही नहीं, वह उनकी सब प्रकार से सहायता करती रही। भोजन के समय वह उन्हें खाना खिला देती, शाम को उनके कमरे में दीपक जला देती। और भी जो काम होता, चुपचाप कर देती।

दिन बीतते गये। एक-एक करके बारह वर्ष निकल गये। पति अपनी साधना में तल्लीन रहा, पत्नी अपने कर्तव्य का पालन करती रही।

आखिर ग्रंथ पूरा हुआ। उस दिन जब पत्नी दीपक जलाने आई तो दार्शनिक का ध्यान उसकी ओर गया, उसने उसे ऐसे देखा, जैसे किसी अजनबी को देख रहा हो। फिर एकदम पहचानकर बोला, ''अरे, तुम?''

पत्नी ने कहा, ''मैं आज नई थोड़ी आई हूं। बारह साल से रोज आपके सामने आती रही हूं।''

उस पति-परायण नारी के सम्मुख दार्शनिक का सिर श्रद्धा से झुक गया। उसकी आंखें डबडबा आईं। बोला, ''मैंने जो कुछ किया सो किया, किन्तु असली साधना तो तुमने की है। बिना तुम्हारी साधना के मैं अपने उद्देश्य में कदापि सफल नहीं हो सकता था।''

यह दार्शनिक थे विख्यात तत्ववेत्ता वाचस्पति मिश्र और बारह वर्ष में जो ग्रंथ पूर्ण हुआ, वह था 'शांकर भाष्य' की टीका।

60. संगत का फल

एक दिन बाजार में एक आदमी दो तोते बेचने को लाया। वे अलग-अलग पिंजरों में बंद थे। उनमें से एक का मूल्य पांच सौ रुपये था, दूसरे का पांच पैसे।

थोड़ी देर बाद एक सेठ वहां आया। उसने दोनों तोते देखे। मूल्य पूछा। मूल्य में इतना अंतर देखकर उसने कहा, ''ऐसा क्यों है?''

आदमी बोला, ''यह आपको अपने आप पता चल जायगा। लेकिन मेरी एक शर्त है कि जो कोई खरीदेगा, वह इन दोनों को एक साथ खरीदेगा।''

सेठ दोनों तोते खरीदकर घर ले गया। रात को सोते समय उसने पांच सौ रुपये वाले तोते को अपने पलंग के पास रखवा लिया। सवेरा हुआ तो तोते ने कहा, ''राम-राम!''

और उसने एक छोटा-सा बड़ा प्यारा भजन सुनाया।

अगले दिन सेठ ने दूसरे पिंजरे को अपने पास रखवाया। जब वह सवेरे उठा तो तोते ने गंदी-गंदी गालियां देना शुरू किया। सेठ को बहुत गुस्सा आया। उसने नौकर से कहा, ''इस तोते को मार डालो।''

तभी बराबर के कमरे से दूसरा तोता बोला, "इसे मारो मत। इसमें इसका कसूर नहीं है। यह मेरा सगा भाई है। हम दोनों एक साथ जाल में पकड़े गये थे। मुझे एक संत ने ले लिया और इसे एक म्लेच्छ ने। संत ने मुझे भजन सिखाये। म्लेच्छ ने इसे गालियां सिखाईं। यह संगत का फल है।"

61. साधु की महिमा

एक साधु थे। अपने आश्रम में रहते थे। उनका नियम था कि बड़े तड़के गंगा-स्नान के लिए जाते थे।

एक दिन उन्हें रात का अन्दाज नहीं हुआ। आधी रात थी। उठे और गंगा-स्नान के लिए चल दिये।

रास्ते में उन्हें चोर मिले। चोरों ने साधु को पकड़ लिया और साथ लेकर चल दिये। उन्होंने एक घर में सेंध लगाई और अंदर घुस गये। बेचारा साधु भी उनके साथ भीतर पहुंच गया।

चोरों ने इधर-उधर से सामान बटोरना शुरू किया। लेकिन साधु की निगाह एक ओर को रखे सिंहासन पर गई। उस पर ठाकुरजी विराजमान थे। साधु ने झट चंदन घिसा, धूप जलाई और फिर भोग की खोज करने लगे। भोग के लिए वहां कुछ था ही नहीं। साधु ने सोचा, कोई बात नहीं है। ठाकुरजी के जगने पर कोई भक्त आ जायगा और भोग लाकर दे देगा।

सिंहासन के पास शंख रखा था। साधु महाराज ने ठाकुरजी को जगाने के लिए शंख बजाया।

शंख का बजना था कि घर के सब लोग जाग गये। चोरों ने यह देखा तो नौ-दो ग्यारह हो गये। साधु पकड़े गये। लोगों में घबराहट फैली थी। साधु ने कहा, "घबराओ मत। जाओ, ठाकुरजी का भोग लगाने के लिए कुछ ले आओ। तब तक मैं पूजा करता हूं। पूजा के बाद सबको प्रसाद दूंगा, उन चोरों को भी, जो मुझे अपने साथ यहां लाये थे।"

लोगों की समझ में कुछ नहीं आया। उन्होंने पूछा तो साधु ने सारी बात कह दी।

सुनकर घर के लोगों की हैरानी दूर हो गई और उन्होंने भोग के लिए पेड़े लाकर दे दिये।

साधु को बड़ा संतोष हुआ। घर के लोगों को खुशी हुई। एक संत के कारण वे लुटने से बच गये।

62. लालच का दण्ड

एक ब्राह्मण था। वह दूसरों के घरों में पूजा-पाठ कराकर अपनी गुजर-बसर करता था। दुर्भाग्य से देश में अकाल पड़ गया। अब ब्राह्मण को कौन पूजा-पाठ के लिए बुलाता! बेचारा भूखों मरने लगा।

एक दिन ब्राह्मण ने सोचा कि ऐसे जीने से तो मर जाना भला है। यह सोचकर वह जंगल में गया। देखता क्या है, सामने से एक शेर आ रहा है। उसने मन-ही-मन कहा, "अच्छा हुआ कि शेर आ गया। मुझे खा जायगा। उसकी भूख मिट जायगी। मेरी देह काम आ जायगी। मेरी इच्छा पूरी हो जायगी।"

वह प्रतीक्षा करने लगा कि शेर आगे आकर उसे खा ले। लेकिन शेर ने सामने आते ही ब्राह्मण से पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

ब्राह्मण ने सारी बात सुना दी। सुनकर शेर को बड़ी दया आई। असल में वह वन का देवता था। अपना असली रूप धारण करके उसने ब्राह्मण को पांच सौ अशर्फियां दीं और कहा, "जाओ, चैन से रहो।"

ब्राह्मण घर लौट आया। एक अशर्फी लेकर जब वह बनिये की दुकान पर गया तो बनिया अशर्फी देखकर चकित रह गया। उसने पूछा, "यह तुम्हें कहां से मिली?"

ब्राह्मण ने सारा हाल कह सुनाया।

बनिया बड़ा लालची था। अगले दिन वह जंगल में गया और शेर के आने की राह देखने लगा। शेर आया और उसने बनिया से वही सवाल किया, जो ब्राह्मण से किया था।

बनिये ने कहा, ''मैं बहुत गरीब हूं। भूखों मर रहा हूं।''

शेर बोला, ''अरे, लालची बनिये! तू झूठ बोलता है! झूठ बोलने की सजा तुझे मिलनी ही चाहिए।''

इतना कहकर शेर ने उस पर हमला किया और उसकी एक आंख फोड़ दी और एक कान काट लिया। बोला, ''तुझे जिन्दा छोड़ देता हूं। आगे कभी लालच में मत आना और झूठ कभी मत बोलना।''

63. करामाती कुदाली

एक धनी आदमी था। उसके दो लड़के थे। बड़ा लड़का आलसी था। छोटा मेहनती।

जब वह आदमी बूढ़ा हुआ तो उसने दोनों लड़कों को एक दिन अपने पास बिठाकर कहा, ''मैंने खूब कमाई कर ली, खूब दुनिया देख ली। अब मेरे जो दिन बचे हैं, उन्हें मैं प्रयागराज में गंगा के किनारे भगवान के भजन में बिताना चाहता हूं। तुम लोग अब बड़े हो गये हो। घर संभाल सकते हो।''

फिर कुछ रुककर वह बोला, ''लेकिन पैसा झगड़े की जड़ होता है। मेरे पीछे तुम लोगों में लड़ाई न हो, इसलिए मैं अपने सामने ही सारा प्रबंध किये जाता हूं।''

लड़कों ने उत्सुकता से पिता की ओर देखा। पिता ने कहा, ''सुनो, मेरे पास एक करामाती कुदाली है। उसे जितना चलाओ, उतना ही वह सोना उगलती है। एक ओर यह कुदाली है, दूसरी ओर सारी धन-सम्पत्ति। तुम लोग बताओ कि कौन क्या लेगा?''

बड़े लड़के ने सोचा कि कुदाली करामाती है तो क्या हुआ वह बराबर सोना देती रहेगी, लेकिन कल को कोई उसे चुरा ले गया तो अपने पास कुछ भी नहीं रहेगा। इसलिए धन लेना चाहिए।

छोटे ने सोचा, धन का क्या भरोसा! खर्चा करते रहो तो बड़े-से-बड़ा खजाना भी खाली हो जाता है। अपन तो इस कुदाली को लेंगे, जो हमेशा सोना उगलती रहेगी।

दोनों ने अपनी-अपनी इच्छा पिता को बतला दी। झगड़े की कोई बात नहीं थी। सहज ही बंटवारा हो गया।

इसके बाद पिता तो प्रयाग चला गया। बंटवारे के हिसाब से बड़ा लड़का धन-सम्पति का मालिक हो गया। पिता का अंकुश हट जाने से वह पैसा पानी की तरह बहाने लगा। घर में नौकर-चाकरों ने देखा कि नया मालिक हाथ-पर-हाथ रखे बैठा रहता है, कुछ देखता-भालता नहीं तो वे भी मौज करने लगे।

उधर छोटा लड़का कुदाली लेकर खुशी-खुशी नये घर में चला गया। उसके पास कुछ भी नहीं था। उसने सोचा कि अब कुदाली की करामात देखनी चाहिए। उसे लेकर वह खेत में पहुंचा और लगा जोर-जोर से मिट्टी पर चलाने, पर यह क्या? सोने का ढेर लगना तो दूर उसे एक कौड़ी भी नहीं मिली। बेचारा बड़े असमंजस में पड़ गया। पिता ने आखिर यह किया क्या? वह हम दोनों को प्यार करते थे। बड़े को इतनी धन-सम्पत्ति मिल गई और मेरे सिर पड़ गया लोहे का यह निकम्मा टुकड़ा!

लेकिन तभी उसके भीतर से आवाज आई— नहीं, पिताजी कभी झूठ नहीं बोल सकते। उन्होंने कहा है कि कुदाली सोना बरसायेगी। तो जरूर बरसायेगी। उनकी बात सच होगी।

यह सोचकर उसने कुदाली को चलाना नहीं छोड़ा। रोज सवेरे खेत पर जाता और दिन भर मिट्टी खोदता। समय आने पर खेत में अनाज बोया गया, फसल उगी और उसके अचरज की सीमा न रही, जब उसने देखा

कि सारी बस्ती में सबसे ज्यादा फसल उसी खेत में हुई। कुदाली ने सचमुच सोना उगला था।

उधर बड़े भाई के धन का भण्डार खाली होता गया और एक दिन आया कि उसे खाने-पीने के लाले पड़ गये, लेकिन छोटा भाई कुदाली की बदौलत मालामाल हो गया।

64. दान का अर्थ

एक सेठ थे। उनके पास बहुत पैसा था। उन्होंने पचास हजार रुपये खर्च करके एक धर्मशाला बनवाई। धर्मशाला पूरी हो जाने पर उन्हें बड़ा संतोष हुआ।

लेकिन कुछ ही दिनों में लोगों ने उन्हें प्रबन्ध-समिति से निकालकर बाहर कर दिया। सेठ को बड़ी चोट लगी। आखिर वह धर्मशाला उनके पैसे से बनी थी! उनकी थी।

उन्होंने बहुत हाथ-पैर पीटे। कोई परिणाम न निकला तो हैरान होकर वह गांधीजी के पास गये। उन्हें सारा हाल कह सुनाया। अंत में बोले, ''बापू, जब तक धर्मशाला बनी नहीं थी तबतक कोई झांका भी नहीं। जब वह बन गई तो पचासों लोग उस पर अधिकार जताने के लिए आ गये। आप ही देखिये, मेरे साथ कितना अन्याय हुआ है।''

सेठ अत्यन्त निराश थे। गांधीजी उनकी बात सुनकर थोड़ी देर चुप रहे। फिर बोले, ''आपको यह निराशा इसलिए हो रही है कि आपने 'दान' का सही अर्थ नहीं समझा है। किसी चीज़ को देकर कुछ पाने की इच्छा करना दान नहीं है। वह तो व्यापार है। व्यापार में लाभ भी होता है तो हानि भी होती है। आपने व्यापार किया है तो आपको लाभ और हानि दोनों के लिए तैयार रहना चाहिए।''

सेठ, पता नहीं क्या-क्या सोचकर, क्या-क्या आशाएं लेकर, गांधीजी के पास गये थे; लेकिन गांधीजी ने जो कुछ कहा, जो कुछ उन्हें दिया, उसकी तो उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। इससे उनके जीवन की दिशा ही बदल गई।

65. सच्चा ज्ञान

किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसके तीन लड़के थे। सेठ ने उन्हें ज्ञान प्राप्त करने के लिए बाहर भेजा। अध्ययन करके बहुत दिनों बाद वे घर लौटे। सेठ ने सोचा कि इनकी परीक्षा लेनी चाहिए कि ये क्या सीखकर आए हैं। उसने सबसे पहले बड़े लड़के से पूछा, ''तुम क्या पढ़कर आये हो?''

उसने कहा, ''आत्म-विद्या।''

सेठ ने सवाल किया, ''आत्म-विद्या का रहस्य क्या है?''

लड़के ने वेद और उपनिषदों के मंत्र सुनाकर आत्म-विद्या का रहस्य समझाने का प्रयत्न किया।

फिर सेठ ने दूसरे लड़के से वही सवाल किया। उसने संत-महात्माओं के अनुभव सुनाये, उनकी शिक्षाएं बताईं और अन्त में कहा, ''उनका सारा जीवन ही आत्म-विद्या से भरा है।''

अब सबसे छोटे लड़के की बारी आई। सेठ ने उससे पूछा, ''तुमने क्या अर्जन किया है?''

वह लड़का चुप रहा। सेठ ने अपना प्रश्न दोहराया। लड़का फिर भी चुप रहा। तब सेठ ने कहा, ''अरे, बोलते क्यों नहीं हो? आखिर इतने दिन में तुमने भी कुछ-न-कुछ तो सीखा ही होगा।''

वह लड़का चुप रहा। सेठ ने अपना प्रश्न दोहराया। लड़का फिर भी चुप रहा। तब सेठ ने कहा, ''अरे, बोलते क्यों नहीं हो? आखिर इतने दिन में तुमने भी कुछ-न-कुछ तो सीखा ही होगा।''

लड़के ने मुंह खोला। धीरे-से बोला, ''पिताजी, मैंने जो आत्म-ज्ञान पाया है, उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। सच्चा आत्म-ज्ञान वह होता है, जो जीवन में जिया जाता है। अपने को जानने के लिए भीतर देखना होता है। शब्द वहां काम नहीं आते।''

सेठ ने उसकी पीठ थपथपाई और उसे सीने से लगाकर कहा, ''तुम ठीक कहते हो। सच्चे ज्ञान का मतलब ही है अपने को जानना।''

66. गांधी की सीख

नौआखाली के दिनों की बात है। वहां गांधीजी की पदयात्रा चल रही थी। एक दिन गांधीजी देवीपुर नामक ग्राम में पहुंचे तो वहां उनका भव्य स्वागत किया गया। ध्वजा, तोरण, पताका आदि से सजावट की गई। गांधीजी ने वह सब देखा तो बड़े गंभीर हो गये। पर उस दिन मौनवार होने के कारण बोले कुछ नहीं।

शाम को मौन समाप्त होने पर उन्होंने मुख्य कार्यकर्त्ता को बुलाकर पूछा, ''आप ये चीज़ें कहां से लाये?''

उस भाई ने कहा, ''हम सबने आठ-आठ आने देकर तीन सौ रुपये इकट्ठे किये। उसी में से ये चीज़ें मंगाई हैं। बापू, आप यहां कब-कब आते हैं!''

गांधीजी को बड़ी वेदना हुई। वह बोले, ''ये सब फूल और ये सब सजावट क्षणभर में मुरझा जायेगी। मुझे लगता है, आप सब मुझे धोखा दे रहे हैं। मेरे लिए आप सारा ठाठ-बाट रचकर साम्प्रदायिक भावना को भड़का रहे हैं। मैं इस समय अग्नि की ज्वालाओं में जल रहा हूं। इन फूल-मालाओं के स्थान पर सूत के हार सजाये जाते तो मुझे इतना न खटकता। सूत के हार शोभा बढ़ाते और उनसे कपड़ा भी बनता। मेरे प्रति प्रेम प्रकट करने के लिए आपने यह सजावट की है तो भी वह अनुचित

है। आपको मेरे प्रति प्रेम हो तो मेरे कहने पर अमल करें। इतने कत्लेआम के बाद इन फूलों पर इतना रुपया खर्च करना आपको कैसे सूझा, यह मैं नहीं समझ सका। आप तो कांग्रेस के कार्यकर्त्ता हैं। फिर आपने विलायती और देसी मिल का कपड़ा रेशम और रिबन इन सबका सजावट में इस्तेमाल किया। यह सब मेरी निगाह में बहुत बुरा है। अगर मेरे लिए तुम्हारे मन में प्रेम और आदर है तो मुझे धोखा मत दो। मैंने जो कुछ कहा है, उस पर अमल करो।''

67. महान त्याग

उर्दू की किसी पाठ्यपुस्तक में गांधी जी ने एक कहानी लिखी थी:

पैगम्बरसाहब के निधन के कुछ ही साल की बात है। अरबी और रूमियों के बीच बड़े जोर की लड़ाई हुई। दोनों ओर के बहुत से योद्धा मारे गये। बहुत-से घायल हुए। लड़ाई का नियम था कि शाम होने पर वह बन्द कर दी जाती थी। तब दोनों दलों के लोग अपने उन मित्रों और साथियों की खोज-खबर लेने के लिए आपस में मिलते थे, जो दूसरे पक्ष की ओर से लड़ रहे होते थे।

एक दिन जब शाम की लड़ाई बन्द हुई, तो अरब सेना का एक जवान अपने चचेरे भाई को देखने निकला। उसकी इच्छा थी कि अगर भाई के चोट आयी हो तो उसकी दवा करे। अगर वह मर गया हो तो उसकी लाश को दफ़ना दे। अचानक उसे यह भी विचार आया कि सम्भव है, भाई को प्यास लगी हो और वह पानी के लिए तड़प रहा हो। सो उसने एक लोटा पानी भी साथ ले लिया।

एक हाथ में लालटेन और दूसरे में पानी का लोटा लेकर वह लड़ाई के मैदान में पहुंचा। वहां देखता क्या है कि सारा मैदान लोगों से अटा पड़ा है। उनमें से कुछ दुनिया से विदा ले चुके थे, कुछ के बदन में घाव हो गये

थे और वे दर्द के मारे चीख रहे थे। भारी दिल से अरब उनके बीच घूम-घामकर अपने भाई को खोजने लगा। थोड़ी देर में उसे वह मिल गया। उसके शरीर में गहरे ज़ख्म हो गये थे, जिनसे खून बह रहा था। उसे बड़ी प्यास लगी थी और वह कराहता हुआ पानी की रट लगा रहा था। उसके बचने की आशा नहीं थी।

अरब ने लालटेन नीचे रख दी और लोटे को दोनों हाथों से पकड़कर जैसे ही उसे पानी पिलाने को हुआ कि इतने में किसी दूसरे घायल सिपाही की पुकार सुनाई दी—''पानी!'' भाई ने जैसे-तैसे टूटी आवाज में कहा, ''पहले उस घायल को पानी पिलाओ, फिर मुझे पिलाना।''

इतना कहकर उसने अपना खुला हुआ मुंह बन्द कर लिया।

अरब लोटा लेकर उस ओर बढ़ा, जिधर से वह आवाज आ रही थी। पास जाकर देखता क्या है कि वह एक बहुत बड़ा सरदार है। अरब उसे पानी पिलाने को झुका कि तभी तीसरी ओर से आवाज आयी—''पानी।''

सरदार बहुत ही घायल हो गया था। पूरे शब्द भी उसके मुंह से नहीं निकल पाते थे। फिर भी उसने कठिनाई से कुछ बोलकर और कुछ इशारे से उस अरब को समझाया कि जब तक उस प्यासे को पानी नहीं मिलेगा, मैं पानी नहीं पीऊंगा।

बेचारा अरब बड़ी परेशानी में पड़ा। वह क्या करे! उसने सरदार पर एक निगाह डाली। उसकी आंखें चमक रही थीं। खोने के लिए समय न था। अरब सपाटे से पानी के लिए तड़पती आवाज को लक्ष्य करके तेजी से बढ़ा। उसका दिल बड़े जोर से धड़क रहा था और वह मन-ही-मन में प्रार्थना कर रहा था।

ज्योंही वह घायल सिपाही के पास पहुंचा और उसे पानी पिलाने को हुआ कि उसने सदा के लिए अपनी आंखें मूंद लीं।

अरब तब दौड़ा-दौड़ा सरदार के पास आया। उसके दुःख का ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि सरदार की भी जीव-लीला समाप्त हो चुकी थी।

दुःख भरे दिल से ख़ुदा की बन्दगी करता हुआ वह अपने भाई के पास गया। वह भी हमेशा के लिए मौत की गोद में सो गया था।

इस कहानी का उल्लेख करते हुए गांधीजी लिखते हैं—''यों तीन घायलों में से किसी ने भी पानी न पाया, पर पहले दो मानवता के इतिहास में अपने नाम अमर करके चले गये।''

आगे फिर वह कहते हैं, ''मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पानी की परीक्षा से कठिन परीक्षा हवा की है। हवा के बिना तो आदमी एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। इसीसे सारा जगत हवा से घिरा हुआ जान पड़ता है। फिर भी कभी-कभी ऐसा भी समय आता है, जब अलमारी जैसी कोठरी के अन्दर बहुत-से आदमी ठूंस दिये हों ओर एक ही सूराख़ से थोड़ी-सी हवा आ रही हो, उसे जो पा सके, वही जिये, बाकी लोग दम घुटकर मर जायें। हम भगवान् से प्रार्थना करें कि ऐसा समय आये तो हम हवा को जाने दें।''

''हवा से दूसरे नम्बर पर पानी की आवश्यकता है। पानी के प्याले के लिए मनुष्यों के एक-दूसरे से लड़ने-झगड़ने की बात सुनने में आती है। हम इच्छा करें कि ऐसे अवसर पर उन बहादुर अरबों का त्याग हममें आवे।''

अन्त में वह लिखते हैं, ''पर, ऐसी अग्निपरीक्षा तो किसी एक की होती है। सामान्य परीक्षा हम सबकी रोज हुआ करती है। हम सबको अपने आप से पूछना चाहिए—जबजब ऐसा अवसर आता है, क्या हम अपने साथियों, पड़ोसियों को आगे करके स्वयं पीछे रहते हैं? यदि नहीं रहते, तो हम नापाक हुए, अहिंसा का पहला पाठ हमें नहीं आता।''

68. आगे बढ़ने का भेद

एक बार दो भाई मुकदमे में फंसकर अदालत में पहुंचे। उनमें एक भाई लखपति था, दूसरा कंगाल। जज को यह बात मालूम हुई तो उसे बड़ा

अचरज हुआ। उसने पैसे वाले से पूछा, ''क्यों जी, तुम दोनों भाई हो, लेकिन तुम इतने अमीर हो और तुम्हारा भाई इतना गरीब है। ऐसा क्यों है?''

धनी भाई ने जज की बात सुनी। बोला, ''आज से कोई पांच साल पहले जब हमारे पिता मरे, तो उनकी दौलत हम दोनों भाइयों को बराबर-बराबर मिली। दो लाख रुपये मेरे हिस्से में आये और उतने ही मेरे भाई को मिले।''

जज ने बीच में ही उत्सुकता से कहा, ''अच्छा तब पांच साल के भीतर इतने सारे उसके रुपये कैसे उड़ गये?''

भाई बोला, ''इसके हाथ में जैसे ही पैसा आया, यह अपने को धनी समझने लगा। बहुत-से नौकर रख लिये। जो भी काम होता, नौकरों से कहता—जाओ, यह करो, वह करो। अपने हाथ से तिनका भी न तोडता। धीरे-धीरे उसे आलस ने घेर लिया। नौकरों ने देखा कि मालिक की आंखें बंद हैं और वह हाथ-पैर भी हिलाना नहीं चाहता, तो वे मनमानी करने लगे। उन्होंने पैसा पानी की तरह बहा दिया। देखते-देखते वह दिन आ गया, जब उसके पास कौड़ी भी न रही।''

''लेकिन,'' जज ने पूछा, ''तुमने क्या किया?''

भाई ने कहा, ''मैंने पैसे मिल जाने पर भी अपने हाथ-पैर की मेहनत नहीं छोड़ी। नौकर मेरे यहां भी थे, लेकिन मैं अपने भाई की तरह उनसे यह नहीं कहता था कि जाओ, यह काम करो, वह काम करो। मैं तो कहता था–आओ भाई, मेरे पीछे आओ। यानी काम करने में मैं हमेशा आगे रहता था। किसी ने कहा है कि जो अपनी मदद आप करता है, उसकी मदद सब करते हैं। मैंने कभी दूसरों के ऊपर काम नहीं छोड़ा। छोटा-बड़ा जो भी काम हुआ, मुस्तैदी से किया। दूसरों से बस मदद ली। आप जानते हैं, इसका नतीजा क्या हुआ?''

जज ने कह, ''क्या?''

वह बोला, ''मेरी आंखें हमेशा खुली रहीं, कौड़ी-कौड़ी पर मेरी निगाह रही और मैं कभी किसी के भरोसे नहीं रहा। इससे मेरी दौलत बढ़ी और आज मेरे पास लाखों रुपये हैं। अगर मैं भी अपने भाई की तरह दूसरों पर निर्भर रहा होता, तो मेरी भी वही हालत हुई होती, जो उसकी हुई है।''

उसका कहना ठीक था। दूसरों के आसरे रहकर कोई आगे नहीं बढ़ सकता।

69. निन्यानवे का फेर

एक ग़रीब आदमी था। वह और उसकी स्त्री अपनी छोटी-सी झोंपड़ी में चैन से रहते थे। आदमी दिन भर कसकर मेहनत करता और जो भी उसे मिलता, उसमें अपना ख़र्च चला लेता। वह सीधा-सादा ईमानदार मजदूर था। उसे न ज्यादा कमाने की इच्छा थी, न बड़ा आदमी बनने की। वह और उसकी पत्नी दोनों उसी में सुखी थे।

उनके पड़ोस में धनी आदमी रहता था। वह हमेशा कमाई के चक्कर में रहता था, इसलिए उसे हर घड़ी पैसे की चिन्ताएं घेरे रहती थीं। आनन्द क्या होता है, इसका उसे पता भी नहीं था।

एक दिन एक साधु उधर से निकला। धनी आदमी ने उसे अपने यहां बुलाकर कहा, ''महात्मन्! मैं बहुत परेशान हूं। मुझे उससे बचने का रास्ता बताइये।''

साधु बोला, ''तुम्हारी चिंताओं और परेशानियों का कारण तुम्हारी धन-दौलत है। जरा अपने गरीब पड़ोसी को देखो। उसके पास पैसे के नाम पर कुछ भी नहीं है। लेकिन उसका चेहरा हमेशा फूल की तरह खिला रहता है। हाथ-पैर की मेहनत से जो कमाई होती है, उसी में मस्त रहता है और चैन की बंसी बजाता है। ऐसा सुख तुम्हारे नसीब में कहां है?''

धनी ने कहा, ''महात्मन्! ऐसी बात नहीं है। मेरा दुःख इसीलिए नहीं है कि मेरे पास पैसा है और पड़ोसी इसीलिए सुखी नहीं है कि उसके पास पैसा नहीं है।''

साधु बोला, ''अच्छा, तो मेरी बात की तुम परीक्षा कर लो।''

इसके बाद अगले दिन धनी आदमी ने साधु की सलाह से एक कपड़े में निन्यानवे रुपये बांधकर उस गरीब के घर में फेंक दिये।

इसका नतीजा जो होना था, वही हुआ। अगले दिन उस गरीब आदमी के घर में चूल्हा नहीं जला। दिन भर की मजूरी से जो पैसा मिलता था, उससे खाने-पीने का सामान जुटाकर वे खुशी-खुशी भोजन पकाते थे और खाते थे, लेकिन उस दिन चूल्हे में आग तक न जली और वे दोनों भूखे सो गये।

दूसरे दिन सवेरे ही साधु पैसे वाले को साथ लेकर उस ग़रीब आदमी के घर गया और उससे पूछा, ''क्यों भाई, कल तुम्हारे यहां खाना क्यों नहीं बना?''

ग़रीब आदमी ने सच-सच सारा हाल कह दिया। बोला, ''महात्मन्, बात यह है कि कलतक मैं कुछ पैसे कमाकर लाया करता था और उन पैसों से आटा, दाल ख़रीदकर पकवाता था। लेकिन कल हमारे आंगन में एक पोटली पड़ी मिली, जिसमें निन्यानवे रुपये थे। हमने सोचा कि इनमें एक रुपया और मिल जाये, तो पूरे सौ हो जायंगे। इसलिए हमने तय किया है कि कुछ समय तक एक-एक दिन छोड़कर खाना खाया करेंगे। इस तरह एक सप्ताह में एक रुपया बच जायगा और हमारे पास पूरे सौ रुपये हो जायंगे।''

70. राष्ट्र की रीढ़

बाइबिल में एक बड़ी ही प्रेरणादायक कहानी आती है। किसी नगर के लोगों ने अपने यहां एक मीनार बनवाने का निश्चय किया। उनकी इच्छा

थी कि मीनार बनवाने पर ख़र्चा कितना ही क्यों न हो जाय, लेकिन वह हो ऐसी कि उसे देखने के लिए दुनिया भर के लोग आवें। उसकी विशेषताओं और कला में कोई भी मीनार उसका मुकाबला न कर सके।

ऐसी मीनार को बनाने के लिए बाहर के होशियार कारीगरों और मज़दूरों को इकट्ठा करना आवश्यक था। उन्हें बुलाया गया। वे आये।

जहां मीनार का निर्माण होना था, उस स्थान का चुनाव पहले ही किया जा चुका था। काम का श्रीगणेश किया गया। लेकिन शीघ्र ही एक बहुत बड़ी कठिनाई आ गई। बाहर से बुलाये गए कारीगर और मज़दूर अलग-अलग देशों के थे। वे एक-दूसरे की भाषा नहीं जानते थे। परिणाम यह हुआ कि राज ईंट मांगता था, मजदूर मसाला देता था और जब कारीगर मसाला मांगता था तो मजदूर ईंटें पहुंचाता था। यह सिलसिला बहुत समय तक चलता रहा।

अंत में जो होना था, वही हुआ, मीनार नहीं बन सकी। उसके निर्माताओं की आशाएं धूल में मिल गईं।

कहानी एक प्रतीक के रूप में है। एक भाषा के अभाव में जब मीनार नहीं बन सकी तो बिना राष्ट्रभाषा के किसी राष्ट्र के विशाल भवन का निर्माण कैसे हो सकता है?

कहावत है– ''राष्ट्रभाषा राष्ट्र की रीढ़ होती है।''

71. मंत्र का फल

राजा जनक को विदेह कहा जाता है। वह राजा थे, पर राजपाट में उनकी तनिक भी आसक्ति नहीं थी। वह आत्म-शोधक थे। अपने दोषों को देखकर उन्हें दूर करने का सतत प्रयत्न करते थे।

एक बार वह नदी के किनारे बैठकर 'सोऽहम्' का जाप कर रहे थे। ऊंचे स्वर में वह बार-बार 'सोऽहम्', 'सोऽहम्' कह रहे थे।

उसी समय वहां से अष्टावक्र निकले। वह परम ज्ञानी थे। राजा जनक को ऊंची आवाज में 'सोऽहम्' का जाप करते हुए देखकर वह एक ओर को रुके, फिर उन्होंने अपने एक हाथ में पानी-भरा कटोरा लिया और दूसरे में छड़ी। अनंतर जनक से कुछ दूर पर खड़े होकर बड़ी तेज आवाज में चिल्लाना आरंभ किया, "मेरे हाथ में पानी का कटोरा है।... छड़ी है।"

राजा जनक के कान में उनकी आवाज पहुंची तो उन्होंने उनकी ओर देखा, पर अपना जाप नहीं छोड़ा। लेकिन जब अष्टावक्र ने अपनी रट बन्द नहीं की तो उन्होंने चिल्लाकर पूछा, "यह तुम क्या कह रहे हो?"

अष्टावक्र ने कहा, "मेरे हाथ में पानी का कटोरा है।... छड़ी है।"

जनक बोले, "वह तो दिखाई दे रहा है।"

अष्टावक्र ने कहा, "तुम क्या बोल रहे हो सोऽहम्! अरे, तुम तो ब्रह्मा हो ही। यह क्या तुम्हें नहीं दिख रहा है?"

कुछ देर रुककर अष्टावक्र बोले, "मंत्र को यंत्रवत रटने से कुछ नहीं होता, उसे अन्तर की चेतना के साथ जोड़ने पर ही उसका फल मिलता है।"

72. अनुपम देश-भक्ति

बहुत वर्ष पहले की बात है। स्वामी विवेकानन्द जापान गए थे। वहां एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा कर रहे थे। एक दिन वह रेल से कहीं जा रहे थे। रास्ते में उनकी फल खाने की इच्छा हुई। उन्होंने इधर-उधर बहुत खोज की; लेकिन कहीं भी फल नहीं मिले। आख़िर निराश होकर उनके मुंह से निकला, "यह जापान कैसा देश है कि जहां फल भी नहीं मिलते!"

उनके पास एक जापानी युवक बैठा था। उसके कानों में ये शब्द पड़े, तो वह तिलमिला उठा।

उसे पता था कि फल कहां मिलते हैं। अगले स्टेशन पर वह उतरा और थोड़ी ही देर में जब लौटा तो उसके हाथ में फलों का लिफाफा था। बड़े प्रेम से उसने वे फल स्वामीजी के सामने रख दिये।

स्वामीजी ने मुसकराकर उसे धन्यवाद दिया। फिर पूछा, "इन फलों के दाम कितने हैं?"

युवक ने स्वामीजी की ओर देखा और देखता रहा। बोला कुछ नहीं।

स्वामीजी जानते थे कि वह उन्हें पैसे देकर ही लाया होगा। अतः उन्होंने अपनी बात को दोहराते हुए कहा, "संकोच मत करो। साफ़-साफ़ बता दो।"

युवक की आंखें छलछला आई। बोला, "स्वामीजी, इनका मूल्य..."

कहते-कहते उसकी वाणी रुक गई।

स्वामीजी ने कहा, "हां-हां, रुक क्यों गए? बोलो।"

"इनका मूल्य," नौजवान ने धीमे स्वर में कहा, "यह है कि आप अपने देश में जाकर यह न कहें कि मेरे देश जापान में फल नहीं मिलते।"

73. फकीरी की मस्ती

ख़लीफ़ा जुनैद का मुसाहिब था। उनका नाम था अहमदबिन-यजीद। वह बड़े ठाट-बाट से रहता था, शान से घूमता-फिरता था। अपने सामने सबको छोटा समझता था और सबके साथ बड़ा कठोर व्यवहार करता था।

एक दिन एक बहुत बड़े सूफी संत का प्रवचन हो रहा था। अहमद उस सभा में पहुंच गया। संत कह रहे थे, "इंसान के बराबर कमजोर और कोई जीव नहीं है, लेकिन उसके घमंड की कोई हद नहीं है। जोश में भरकर वह बुरे-से-बुरे काम कर डालता है और भूल जाता है कि उसका नतीजा क्या होगा।"

संत के उपदेश का अहमद पर बड़ा असर पड़ा। उस दिन उससे

खाना भी नहीं खाया गया। उसने अपनी शान-शौकत की पोशाक उतार दी और फकीर के लिबास में संत के पास गया। बोला, ''आपकी नसीहत का मुझ पर जो असर हुआ है, उसका बयान मैं नहीं कर सकता। अब आप मुझे रास्ता बताइए कि मैं क्या करूं! मेरा दिल दुनिया से एकदम हट गया है।''

संत ने पूछा, ''तुम्हें कौन-सा रास्ता चाहिए—आम या ख़ास?''

अहमद ने कहा, ''दोनों बताइए।''

संत बोले, ''आम तो यह है कि घर-गिरस्ती में रहो, पांचों वक्त जमात में खड़े होकर नमाज़ पढ़ो, पास में पैसा हो तो दान दो और पाक-साफ़ ज़िन्दगी बसर करो। ख़ास यह कि दुनिया को छोड़कर अल्लाह की इबादत करो।''

अहमद ने दूसरा रास्ता पसंद किया। वह घर-बार छोड़कर जंगल में चला गया।

कुछ दिनों बाद अहमद की बूढ़ी मां रोती हुई संत के पास आकर बोली, ''मेरा इकलौता बेटा आपकी सोहबत में दीवाना होकर जाने कहां चला गया!''

संत ने दिलासा दिया। कहा, ''घबराओ मत। तुम्हारा लड़का जब आवेगा तो मैं तुम्हें ख़बर कर दूंगा।''

कुछ दिनों बाद अहमद आया तो संत ने उसकी मां को ख़बर दी। मां, उसकी बीवी और लड़के को लेकर आई। अपने बेटे को दुबला और फ़कीरी लिबास में देखकर उससे लिपट गई और रोने लगी। उसकी बहू और लड़का भी रोने लगा। दूसरे लोगों की भी आंखें भर आईं। मां और बीवी ने बहुत कोशिश की कि अहमद घर चले, पर वह राज़ी न हुआ। तब बीवी ने कहा, ''यह लड़का आपका है। इसका आप पर हक़ है। इसका कुछ इंतजाम कीजिए।''

अहमद ने मुसकराते हुए उसके बढ़िया कपड़े उतरवाकर कम्बल उढ़ा दिया और कहा, ''मेरे साथ चलो।'' लड़का तैयार हो गया।

लेकिन अहमद की मां और बीवी से यह नहीं देखा गया। उन्होंने बालक को वापस ले लिया। उसका कम्बल उतारकर कपड़े पहनाये और कहा, ''ठीक है। हम इसकी देखभाल ख़ुद कर लेंगे।''

उनके आंसू और उनका आग्रह अहमद को उसके रास्ते से नहीं डिगा सका। ममता की जिस डोर को वह पहले ही तोड़ चुका था, वह फिर उसे नहीं बांध सकी। ईश्वर के चरणों में एक बार लौ लग जाती है तो सहज ही छूटती नहीं। फ़कीरी की मस्ती में झूमता हुआ अहमद तेज़ी से जंगल की ओर बढ़ गया। मां और बीवी की ममता बिलखती रही, पर अहमद तो अपने आनन्द में डुबकी लगा रहा था।

74. प्रभु-प्राप्ति का मार्ग

दक्षिण भारत में एक बहुत बड़े संत हुए हैं। उनका नाम था मध्वाचार्य। उनके अनेक शिष्य थे। शिष्यों में कुछ धनी लोग थे, कुछ साधु-संत थे। साधुओं में एक ऊंचे दर्जे के आदमी थे। उनका नाम कनकदास था।

एक दिन मध्वाचार्य के शिष्य आपस में चर्चा करने लगे कि ईश्वर को कौन पा सकता है? किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। अंत में उन्होंने साधु कनकदास से पूछने का फैसला किया। शिष्यों में से एक साधु ने सबसे पहले कनकदास से प्रश्न किया, ''क्या 'मैं' परमात्मा को पा सकता हूं?''

कनकदास ने उत्तर दिया, ''अवश्य, लेकिन यह तब होगा जब 'मैं' जायगा।''

दूसरे ने कहा, ''मुझे बताइये।''

कनकदास बोले, ''तुम भी ईश्वर को तभी पा सकोगे जब 'मैं' जायगा।''

सारे शिष्यों ने बारी-बारी से यही सवाल किया और सबको यही जवाब मिला।

सुनकर शिष्य हैरान हुए। कनकदास बात हमेशा सोच-समझकर कहते थे। उनकी बात का दूसरों पर प्रभाव पड़ता था। विस्मित स्वर में एक शिष्य ने कहा, ''स्वामीजी, आप भी तो भगवान के पास जायंगे न?''

''जरूर,'' कनकदास ने उत्तर दिया, ''लेकिन मैं भी तभी जा पाऊंगा, जब 'मैं' जायगा।''

शिष्य-मण्डली एक-दूसरे का मुंह देखने लगी। ''मैं जायगा, मैं जायगा, आखिर यह 'मैं' कौन है? यह किस-किस के साथ जायगा?''

कनकदास ने उनकी परेशानी को देखकर कहा, ''आप लोग मेरी बात समझे नहीं। 'मैं' का अर्थ है मोह, 'मैं' का अर्थ है 'अहंकार'। जबतक 'मैं और मेरा' और 'मैं भी कुछ हूं' का अहंकार नहीं मिटेगा तबतक हम ईश्वर को नहीं पा सकते। प्रभु के रास्ते की यही दो सबसे बड़ी रुकावटें हैं। उन्हें दूर किये बिना प्रभु की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती।''

75. अपराध किसका?

दक्षिण अफ्रीका की बात है। वहां गांधीजी ने फिनिक्स आश्रम की स्थापना की थी। आश्रम के अधिष्ठाता गांधीजी स्वयं थे।

एक दिन एक युवक गांधीजी के पास आया और उसने आश्रम में भर्ती होने की इच्छा व्यक्त की। उसने प्रतिज्ञा की कि वह एक महीने तक बिना नमक का भोजन करेगा। गांधीजी ने उसे आश्रम में रख लिया।

लेकिन कुछ ही समय में उसका मन उस सादे भोजन से ऊब गया और डरबन से मसालेदार स्वादिष्ट चीज़ें मंगवाकर चुप-चाप खा ली और सथियों को खिला दीं।

संयोग से उसके एक साथी ने, जिसने वे चीजें खाई थीं, गांधीजी को इसकी ख़बर दे दी।

शाम की प्रार्थना के बाद गांधीजी ने आश्रम के सब सदस्यों को बुलाया और पूछा, ''क्या तुमने वह खाना खाया?''

सबने साफ इन्कार कर दिया। साथ ही उन्होंने ख़बर देने वाले को झूठा ठहराया।

फिर क्या था, गांधीजी ने तड़ातड़ अपने गालों पर चांटे लगाना शुरू कर दिया। ''मुझसे सच्चाई छिपाने में क़सूर तुम्हारा नहीं, मेरा है, क्योंकि अभी तक मैंने सत्य का गुण प्राप्त नहीं किया है। सत्य मुझसे दूर भागता है।''

गांधीजी का हाथ रुका नहीं। वह अपने को पीटते रहे।

इसका प्रभाव यह हुआ कि युवकों ने अपनी भूल स्वीकार की और गांधीजी से क्षमा मांगी।

76. खण्डहर का आर्त्तनाद

''आप जा कहां रहे हैं? रुकिये।''

इन शब्दों को सुनकर आगन्तुक ठिठक गया, विस्मय से इधर-उधर देखने लगा। वहां कोई भी नहीं था। बस, एक ध्वस्त इमारत खड़ी थी।

आगन्तुक को किंकर्त्तव्य-विमूढ़ देखकर फिर वह स्वर उभरा, ''मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूं और तुम मुझे देख नहीं पा रहे हो। मैं बड़ा ही दर्दनाक इतिहास हूं। मेरे पन्ने ख़ून से भरे हैं। मेरे पन्नों में खण्डहर का आर्त्तनाद है।''

इतना कहकर स्वर मौन हो गया, जैसे गला अवरुद्ध हो गया हो। आगन्तुक अविचल खड़ा रहा। तभी स्वर फिर गूंजा, ''कौन जानता था कि इस नगर पर इतना क़हर बरपा होगा! सबकुछ वीरान हो जायगा। लाखों नर-नारी मौत की गोद में चले जायंगे। ओफ, इन्सान के भीतर कितना विकराल दानव बैठा है! उसने एक ही झपट्टे में सबकुछ मिट्टी

में मिला दिया, न घर छोड़े, न आदमी छोड़े। जो बचे, उनकी कराह आज भी सुनाई देती है।''

''ज़रा देखो, इंसानियत ने क्या लिखा है—'अब और हीरोशिमा नहीं।' दूसरी ओर विनाश-लीला की तैयारियां हो रही हैं।''

आगन्तुक के आगे खण्डहर साकार हो गया। उसका आर्त्तनाद उसके हृदय को विदीर्ण करने लगा। उसने आंखे बंद कर लीं, कान मूंद लिये।

थोड़ी देर में आर्त्तनाद को चीरता इतिहास का स्वर फिर गूंजा, ''आंख-कान बंद करने से कुछ नहीं होगा। आज दानव इसलिए जग रहा है, क्योंकि इंसानियत सो रही है। जिस दिन इंसानियत जाग जायगी, दानव सो जायगा। तब इन्सान इन्सान के दर्द को समझेगा और उसके हाथ में घृणा का नहीं, प्रेम का अस्त्र होगा।''

आगन्तुक की आंखें खुल गईं और वह एक नया संकल्प लेकर वहां से चल दिया।

77. बिना नींव का मकान

एक आदमी था। एक दिन उसके सिर पर एक सनक सवार हो गई। उसने सोचा, लोग कितने मूर्ख हैं। घर बनाते हैं और जो दिखाई नहीं देता, उस नींव पर इतना खर्च करते हैं! मैं ऐसा घर बनाकर दिखाऊंगा, जिसकी नींव नहीं होगी।

उस आदमी के पास साधनों की कमी नहीं थी। बिना नींव के मकान बनना आरम्भ हो गया। जो भी देखता, वही कहता, ''भले आदमी, तुम कर क्या रहे हो! कहीं बिना नींव के मकान बनता है!''

वह आदमी हंस पड़ता। लोगों से कहता, ''अपनी राय तुम अपने पास रखो। मुझे जो करना है, वही मैं करूंगा।''

उसकी हठ देखकर लोगों ने आगे कुछ भी कहना छोड़ दिया।

मकान की दीवारें बनने लगीं। लेकिन दीवारों के ऊपर पहुंचते-पहुंचते वे टेढ़ी हो गई। वह आदमी राज-मजदूरों पर झल्लाया, ''तुम लोग काम करना नहीं जानते। तुम लोग निकम्मे हो।''

कारीगरों ने जी-जान से मकान बनाने की कोशिश की, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। आख़िर दीवारों को टिकने के लिए बुनियाद चाहिए थी। बिना बुनियाद के दिवारों का खड़ा होना और खड़े रहना असंभव था।

फ़िर भी वह आदमी अपनी जिद पर रहा। उसने उन कारीगरों को हटाकर दूसरे कारीगर रखे, पर वे भी कुछ नहीं कर सके।

अब वह आदमी हैरान हो गया। एक दिन संयोग से एक साधु उधर से निकले। उस आदमी ने उन्हें रोककर अपनी कठिनाई बताई और गिड़गिड़ाकर कहा, ''महाराज, मुझे ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मेरी इच्छा पूर्ण हो।''

साधु ने उसकी बात सुनी, फिर गम्भीर होकर कहा, ''तुम मूर्ख हो, कुछ लोग तुमसे भी बढ़कर मूर्ख हैं। तू बिना नींव के मकान ही खड़ा करना चाह रहा है; लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं, जो बिना बुनियाद के अपना जीवन खड़ा करना चाहते हैं। याद रख, बुनियाद के बिना मकान नहीं बन सकता। बन भी गया तो टिक नहीं सकता। उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी बिना पक्की बुनियाद के बन नहीं सकता। नींव का होना अनिवार्य है।''

78. स्वतंत्र आत्मा

ढाई हजार वर्ष पहले की बात है। उस समय महावीर घर में रहते थे। एक दिन वह घूमने निकले। उनके साथ एक परिचारक था। घूमते-घूमते वह एक बहुत बड़े मकान के सामने आये। अचानक उनके कानों में किसी के भयंकर रूदन और क्रंदन का स्वर पड़ा। उन्होंने परिचारक से कहा, ''यह क्या है? जाओ, पता लगाकर आओ।''

परिचारक गया। थोड़ी देर में लौटकर आया। बोला, ''एक आदमी दूसरे को बुरी तरह पीट रहा है और पिटने वाला चीख रहा है।''

महावीर ने पूछा, ''ऐसा क्यों हो रहा है?''

परिचारक ने कहा, ''इसलिए कि मारने वाला मालिक है और पिटनेवाला दास है।''

महावीर गंभीर हो गये। बोले, ''अच्छा! समाज में कोई मालिक होता है और उसके हाथ में यह अधिकार रहता है कि वह दूसरे को मार सके?''

परिचारक ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा, ''राजकुमार, आज के समाज में इतना ही नहीं, और भी कुछ होता है। आदमी चाहे तो अपने दास को बेच भी सकता है।''

इतना सुनते ही महावीर का अंतर व्यथित हो उठा। वह सोचने लगे, यह कैसा समाज है? सब प्राणियों के आत्मा होती है। तब कोई स्वामी और कोई दास कैसे हो सकता है? कोई बड़ा और कोई छोटा कैसे हो सकता है?

वह जितना सोचते गये, उतना ही विचार-सागर में डूबते गये, ''नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। हर्गिज नहीं हो सकता। गौरव के साथ जीने का अधिकार सबको है। उसे उससे कोई छीन नहीं सकता।''

''हमें ऐसे ही समाज की रचना करनी चाहिए।''

महावीर के अंदर बीज तो पहले से ही पड़ा था। उसे खाद मिली और वह पनपने लगा। अंत में वह दिन आया जब महावीर घर-बार, राज-पाट और राजसी वैभव को तिलांजलि देकर कठोर साधना के मार्ग पर निकल पड़े।

स्वतंत्र आत्मा दूसरे की स्वतंत्रता को उतना ही मान देती है, जितना अपनी स्वतंत्रता को।

79. नया रास्ता

भू-दान के दिनों की बात है। एक महिला बाबा विनोबा से मिलने आई। बोली, ''मैं बड़ी दुःखी हूं।''

विनोबा ने पूछा, ''क्यों, क्या बात है?''

महिला ने रुंधे कण्ठ से कहा, ''मेरा पति शराबी है। रोज शराब पीता है। मुझे बुरा-भला कहता है। कभी-कभी मारपीट भी कर देता है। मेरा जीवन नर्क हो गया।''

विनोबा ने पूछा, ''जब वह शराब पीता है, तुम क्या करती हो?''

वह बोली, ''मुझे बड़ा गुस्सा आता है और मैं पहले उसे खूब उल्टी-सीधी सुनाती थी। लेकिन जब उसका कोई असर नहीं हुआ तो अब मैंने उपवास करना शुरू कर दिया।''

''उपवास में खाना-पीना सब छोड़ देती हो? विनोबा ने पूछा।''

''नहीं,'' वह बोली, ''फल खा लेती हूं।''

विनोबा ने सहज स्वर में कहा, ''अरे, तब तो तुम्हारा आदमी और भी गुस्सा होता होगा। तुम्हारे फल खाने से घर का खर्चा बढ़ गया होगा न!''

महिला चुप हो गई। उसकी आंखों से आंसू टपकने लगे।

विनोबा ने कहा, ''देखो, गुस्से से या खाना छोड़ देने से किसी को बुरे रास्ते से नहीं हटाया जा सकता। प्रेम से और धीरज से ऐसा काम किया जा सकता है। लेकिन प्रेम भी वही असरकारक होता है, जो भीतर से उठकर आता है। दिल साफ होना चाहिए। दिल में दुर्भावना हो और दिखावे के लिए प्रेम के शब्द कहो तो उनका प्रभाव उल्टा होता है।''

महिला ने कहा, ''मैं क्या करूं? उनको शराब के नशे में देखकर मेरा मन बेक़ाबू हो जाता है।''

''यही तो ख़राबी की जड़ है।'' विनोबा बोले, ''तुम अपने आदमी

को बुराई से तभी रोक सकोगी जब स्वयं अपनी बुराई को जीत लोगी। उसी की पहले कोशिश करो।''

महिला चली गई। पर उसके चेहरे से लग रहा था कि उसे नया रास्ता मिल गया है।

80. मनुष्य का धर्म

उन दिनों की बात है, जब गांधीजी नौआखाली में घूम रहे थे। वह जहां भी जाते थे, अखबार वाले वहीं पहुंच जाते थे। वे गांधी से तरह-तरह के सवाल पूछते थे और गांधीजी बड़े प्रेम से उन सवालों के उत्तर देते थे। नौआखाली में भी कई पत्रों के प्रतिनिधि उनके साथ थे।

एक दिन एक प्रतिनिधि ने उनसे कहा, ''गांधीजी, आपने सन् 1925 में कहा था कि मैं शासन-विधान में यह धारा रखूंगा कि स्वतंत्र भारत में मत देने का अधिकार उसी को होगा, जो शारीरिक परिश्रम से राज्य की कुछ-न-कुछ सेवा कर सके। क्या आप अब भी इस बात पर कायम हैं?''

गांधीजी ने जो उत्तर दिया, वह आज भी सार्थक है। उन्होंने कहा, ''इस बात पर तो मैं मरते दम तक क़ायम रहूंगा। भगवान ने मनुष्य को बनाया है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि, वह रुपया दे और सबके साथ हाथ-पैर की मेहनत करके खाये। बुद्धि से रुपया बटोरकर भोग-विलास के साधन पैदा करना और ऐशो-आराम से जीवन बिताना पाप है।''

81. स्वामी का वात्सल्य

एक स्वामी थे। उनका एक बड़ा ही स्वामिभक्त सेवक था। एक दिन सेवक के हाथ से स्वामी का कलम छूटकर धरती पर गिर गया और टूट

गया। स्वामी ने खीजकर कहा, ''यह तुमने क्या किया! यह कलम मुझे किसी ने बड़े प्रेम से दिया था!''

सेवक कुछ नहीं बोला। चुपचाप बाहर जाकर बरामदा साफ़ करने लगा। वह अपनी असावधानी से बड़ा दुखी था।

थोड़ी देर में स्वामी ने आवाज दी, ''इधर आओ।''

सेवक के आने पर स्वामी ने उसकी कलाई पकड़कर कहा, ''तुम हमारी कितनी सेवा करते हो? तुम्हारी सेवा के बिना मैं एक दिन भी नहीं जी सकता। लेकिन तुम्हारी जरा-सी भूल पर मैं इतना बिगड़ गया। तुम मुझे माफ कर दो।''

सेवक को काटो तो खून नहीं! स्वामी यह क्या कह रहे हैं! चकित होकर बोला, ''बाबू, हमने गलती की। आपका गुस्सा होना ठीक था।''

स्वामी की आंखों में आसू भरे थे। उन्होंने अवरुद्ध कण्ठ से कहा, ''जबतक तुम हमको माफ नहीं कर दोगे, हम तुमको नहीं छोड़ेंगे।''

सेवक का दिल पहले से ही भरा था। स्वामी का इतना कहना था कि वह बच्चे की तरह रोने लगा। स्वामी ने उसकी कलाई और कसकर पकड़ ली। सेवक ने स्वामी की आंखों से आंसू पोंछे और सुबकते हुए बोला, ''बाबू, आप चुप हो जाइये। हमने आपको माफ कर दिया।''

यह स्वामी थे भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद और सेवक था सीताराम। कहने की आवश्यकता नहीं कि दोनों के बीच पिता और पुत्र जैसा संबंध था।

•••

हिंदी के जाने-माने लेखक श्री यशपाल जैन की पांच पुस्तकें - 'नैतिक कथाएं', 'अमर कथाएं', 'आदर्श कथाएं', 'ज्ञान कथाएं' और 'आलोक कथाएं' पाठकों के लिए उपलब्ध हैं। इन्हें पाठकों ने इतना पसंद किया है कि प्रत्येक पुस्तक के एकाधिक संस्करण हो चुके हैं। फिर भी उनकी मांग बराबर बनी हुई है। ये कथाएं इतनी रोचक, रुचिकर और प्रेरणादायक हैं कि पढ़ते-पढ़ते तृप्ति नहीं होती। एक भी कथा ऐसी नहीं है, जिसमें कोई-न-कोई शिक्षा निहित न हो। इन कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये मानव की सुप्त चेतना को झकझोरती हैं और उसे कर्तव्य-बोध कराकर एक नई दिशा में मोड़ती है।

ये कथाएं अपने देश के सभी भागों में तो पढ़ी ही जा रही हैं, अन्य देशों में भी उनके पाठक हैं। फ़ीजी में तो आकाशवाणी से उनका नियमित प्रसारण हुआ है। दिल्ली दूरदर्शन के लिए उन पर कुछ धारावाहिक तैयार किए गए हैं। हमें विश्वास है कि ये तथा 'मण्डल' की अन्य पुस्तकें सभी क्षेत्रों और सभी वर्गों में चाव से पढ़ी जाएंगी और इनका जीवन-निर्माण में भरपूर लाभ लिया जाएगा।

ISBN 978-81-7309-882-6

9 788173 098826

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

₹ 60/-